प्रकाशक:—
बाबू दयाराम,
सरस्वती भवन,
मोहनलाल रोड, लाहौर

विषय-सूची

खंड पहला

भारत में स्वतंत्र शक्तियों का उत्थान

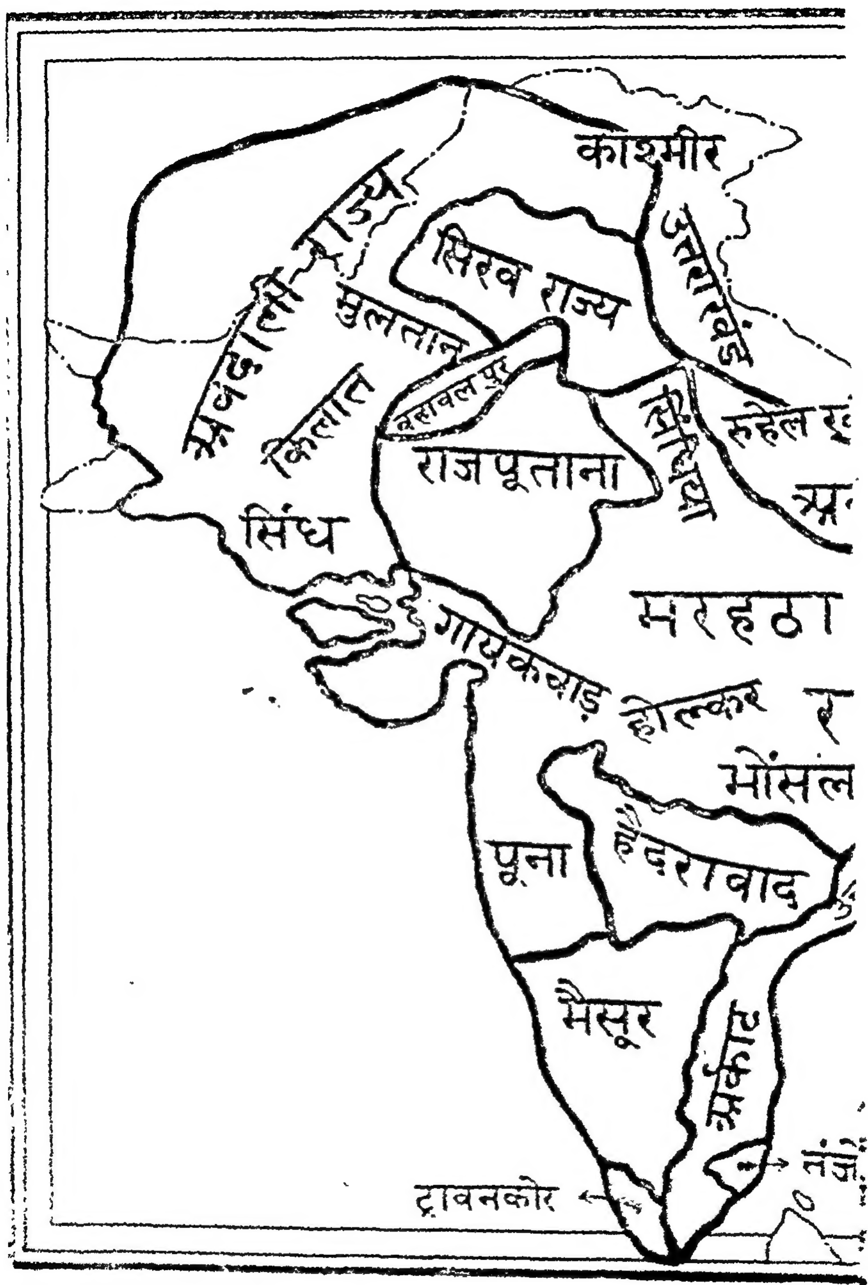
१७१६—१८०५

खंड दूसरा

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का साम्राज्य

१८०५—१८५८

१०. मारक्विस आफ़ हेस्टिंग्स १८१३--१८२३
लार्ड एम्हर्स्ट १८२३--१८२८
११. लार्ड विलियम बैंटिक १८२८--१८३५
सर चार्लस मेटकाफ़ १८३५--१८३६
१२. लार्ड आकलैंड १८३६--१८४२
लार्ड एलेनबरा १८४२—१८४४
१३. लार्ड हार्डिंग पहला १८४४—१८४८
लार्ड डलहौज़ी १८४८—१८५६
१४. लार्ड कैनिंग १८५६—१८५८


काश्मीर
अफ़गानी राज्य
सिख राज्य
उत्तराखंड
मुलतान
किलात
बहावलपुर
राजपूताना
सिंधिया
सिंध
मरहठा
गायकवाड़
होल्कर
पूना
हैदराबाद
मैसूर
अर्काट
ट्रावनकोर

भारतवर्ष मरहठों के समय में



भारतवर्ष का इतिहास

खंड १

भारत में स्वतंत्र शक्तियों का उत्थान

१७१६—१८०५

पहला अध्याय

भारत में पहली यूरोपीयन बस्तियाँ

भारत और यूरोप के मध्य पुराने व्यापारिक मार्ग

संसार के दूसरे देशों के साथ भारतवर्ष के व्यापारिक संबंध बहुत पुराने समय से रहे हैं। पश्चिम में ईरान, अरब, और मिश्र के साथ इसके व्यापारिक संबंध बहुत ही प्राचीन हैं। जिस समय यूरोप में रोमन साम्राज्य कीर्ति के सर्वोच्च शिखर पर था, उस समय रोम-सागर के आस-पास के सारे देश इस साम्राज्य के बीच गिने जाते थे। उस समय भारत के व्यापारिक पदार्थों—मसाले, लाल मिर्चें, रेशमी तथा सूती माल—की यूरोप की मंडियों में खूब बिक्री होती थी। यह सारा व्यापारिक माल तीन मार्गों के द्वारा यूरोप पहुँचता था। एक मार्ग तो बिलकुल स्थल में से होकर था। यह मार्ग पंजाब से पेशावर, दर्रा खैबर, काबुल और हिरात होकर अथवा मुलतान, दर्रा बोलान, कंधार, और हिरात होकर ईरान, वर्तमान टर्की और कुस्तुन्तुनिया Constantinople को जाता था। दूसरा मार्ग कुछ स्थल पर से और कुछ समुद्र पर से था। सूरत अथवा सुपारका (बंबई के पास) के बंदरगाह से भारतीय माल अरब सागर, और ईरान की खाड़ी में से होता हुआ बसरा पहुँचता था। वहां से स्थल के मार्ग से बगदाद, दमिश्क, और अलेप्पो होता हुआ रोम-सागर के बंदरगाहों में पहुँचता [illegible]

रास्ता बिलकुल जल मार्ग का था। कालीकट, सुपारका, सूरत और बड़ौच से भारत का माल लादा जाकर अरब-सागर और लाल-सागर को पार कर मिश्र होता हुआ रोम-सागर के बंदरगाहों काहिरा (Cairo) और सिकंदरिया (Alexandria) पहुँचाया जाता था। कुस्तुन्तुनिया, अलप्पो और सिकंदरिया की मंडियों में वेनिस और जेनोआ के सौदागर भारत से माल खरीद कर सारे यूरोप में जाकर बेचा करते थे। शताब्दियों तक यही क्रम चलता रहा। जब अरब शक्तिशाली हुए और मध्य एशिया, ईरान, ईराक, वर्तमान टर्की, सीरिया तथा मिश्र में उनका साम्राज्य फैला, तब भी इन तीनों व्यापारिक मार्गों का उपयोग किया जाता रहा। परंतु जब १३वीं और १४ शताब्दी में तुर्क लोगों ने अरबी के मध्यवर्ती पूर्वीय साम्राज्य पर अधिकार कर लिया और तुर्कों का साम्राज्य भारत से लेकर बालकान-राज्यों तक फैल गया, तब यह तीन व्यापारिक मार्ग बंद हो गए और भारत के माल का यूरोप पहुँचना कठिन हो गया।

भारत के नए जल-मार्ग की खोज

जब इस प्रकार तुर्कों ने भारत और यूरोप के व्यापारिक मार्गों को बंद कर दिया, तब यूरोपियन सौदागर ने भारत के माल को यूरोप लाने के लिए कुछ दूसरे उपाय सोचने शुरू किए। वे ऐसे मार्ग की खोज करने लगे जो कि तुर्कों के राज्य में से होकर न जाता हो। इसी समय कुछ यूरोपियन वैज्ञानिकों ने यह बताना शुरू कर दिया था कि पृथ्वी गेंद की तरह गोल है। यदि यह बात वास्तव में सच्च है तो पश्चिम की ओर यात्रा करते हुए पूर्वीय देशों में पहुंच सकना संभव है। कुछ जल-यात्रियों ने यह भी सोचा कि यूरोप के दक्षिण में स्थित अफ्रीका महाद्वीप का कहीं न कहीं अंत अवश्य होगा। यदि कोई दक्षिण में अफ्रीका के **पश्चिमी तटों के साथ** साथ यात्रा करे, तो कभी न [illegible] ...का **महाद्वीप के अंतिम सिरे पर** अवश्यमेव पहुँच जायगा

ओर वहां से पूर्व की ओर भारत के लिए रास्ता अवश्य होगा। इन विचारों के अनुसार पश्चिमी यूरोप के जल-यात्रियों ने पश्चिम तथा दक्षिण की ओर यात्राएँ आरंभ कर दीं। उस समय यूरोप के लोग भारत का नया मार्ग ढूँढ़ निकालने के लिए इतने लालायित थे कि यूरोप के हर देश ने इसकी खोज शुरू कर दी। जेनोआ के कोलंबस नामक एक मल्लाह को, स्पेन की सरकार ने धन की सहायता दी और वह भारत की खोज करने के लिए अंधमहासागर के पार पश्चिम की ओर चल पड़ा। भारत की खोज करते हुए वह अकस्मात् सन् १५९२ में नई दुनिया, जिसे आजकल अमरीका के नाम से पुकारते हैं, जा पहुँचा। इस प्रकार अमरीका के दो महाद्वीप स्पेन के अधिकार में हो गए और बहुत-सा सोना और चांदी उसके हाथ लगी।

वास्कोडिगामा

जिस समय स्पेन पश्चिम-सागर में से होकर भारत का मार्ग खोज रहा था, उसी समय पुर्तगाल वाले भी दक्षिण-मार्ग से अफ्रीका महाद्वीप के चारों ओर चक्कर काट कर भारत पहुँचने का यत्न कर रहे थे। अंत में उनका प्रयत्न सफल हुआ। वास्कोडिगामा (Vasco Da Gama) नामक एक पुर्तगालवासी सन् १४८७ में अफ्रीका महाद्वीप के सब से दक्षिण सिरे पर जा पहुँचा। वहां से पूर्व की ओर मुड़ कर अफ्रीका महाद्वीप के तट के साथ-साथ चलता हुआ मोजंबिक पहुँचा और भारत से आने वाले व्यापारियों के साथ उसकी भेंट हुई। वहां से वह एक भारतीय व्यापारी के साथ हो लिया और अरब-सागर की यात्रा करता हुआ सन १४९८ में, मालाबार तट पर स्थित कालीकट के बंदरगाह पर आ पहुँचा। यूरोपियनों के प्रयत्न सफल हुए। कालीकट के तत्कालीन राजा जमोरिन ने पुर्तगाली-यात्री वास्कोडिगामा का स्वागत किया। उसे देश में व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। पुर्तगाल वाले अपने देश को माल सीधा ले जाने लगे।



राजा जमोरिन और वास्कोडिगामा

भारत मे पोर्चगीज़ बस्तियां

जब इस प्रकार पुर्तगालवालों ने यूरोप और भारत के मध्य जल-मार्ग मालूम कर लिया, तो स्वाभाविक रूप से भारत का सारा व्यापार उनके हाथों में पहुँच गया। उन्होंने अफ्रीका और भारत के समुद्र-तटों पर बहुत सी बस्तियाँ स्थापित कीं। सन् १५०८ में एलबुकर्क को भारत-स्थित बस्तियों का गवर्नर बनाकर भारत भेजा गया। उस समय दक्षिण में बहमनी राज्य का नाश हो चुका था और इसके बदले पश्चिम में स्थापित होने वाले अहमदनगर और बीजापुर राज्य पश्चिमी समुद्र-तट पर अपनी सत्ता को स्थिर रखने में असमर्थ थे। तटों पर छोटे-छोटे कई सरदारों का आधिपत्य था, जिन पर विजय पाना कोई कठिन काम न था। इसलिए पुर्तगालवालों की अधिकांश बस्तियाँ पश्चिमी समुद्र-तट पर ही स्थापित हुईं। सन् १५१० में गोआ

र उन्होंने क़ब्ज़ा कर लिया। गुजरात और काठियावाड़ के राजा की कुछ सेवा के बदले में उन्हें सन् १५३५ में चॉल, बंबई, बसीन, महिम, डामन और ड्यू की बस्तियाँ मिल गईं। इन स्थानों पर उन्होंने अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कीं। भारत का माल धड़ाधड़ पुर्तगाल के बंदरगाहों में आने लगा। अन्य यूरोपियन व्यापारी भी भारतीय माल ख़रीदने के लिए पुर्तगालियों के बंदरगाहों पर आने लगे। जेनोआ और वेनिस की पुरानी व्यापारिक मंडियां नष्ट हो गईं। भारत के इस व्यापार से पुर्तगाल वाले माला-माल हो गये। परंतु यह स्थिति सन् १५६५ तक ही जारी रही। तलीकोट के युद्ध में विजयनगर-साम्राज्य के पतन के बाद दक्षिण भारत में उत्पात और अशांति फैल गई। ऐसी परिस्थिति में व्यापार जैसे शांतिमय धंधों का करना कठिन हो गया। इससे पुर्तगाल वालों के व्यापार को गहरा धक्का लगा। इधर यूरोप में भी भारी परिवर्तन हो गये थे। सन् १५८१ में पुर्तगाल पर फ़िलिप द्वितीय का अधिकार हो गया और पुर्तगाल स्पेन के साम्राज्य में मिला लिया गया। परिणाम यह हुआ कि अन्य पुर्तगाल बस्तियों पर भी स्पेन का अधिकार हो गया। इस समय स्पेन को एक और बड़ा युद्ध करना पड़ रहा था। यूरोप में सुधार-युद्ध (Wars of Reformation) शुरू हो गए थे। फ़िलिप रोमन-कैथोलिक धर्म का पक्षपाती था। उसने उत्तर यूरोप के प्रोटेस्टेंटों पर युद्ध की घोषणा कर दी थी। पुर्तगालवालों के बंदरगाह में आने वाले प्रोटेस्टेंट व्यापारियों पर कड़े बंधन लगा दिये गये थे। अन्य सौदागरों ने इस स्थिति से लाभ उठाकर भारतीय वस्तुओं की क़ीमत चढ़ा दी। यूरोप की मंडियों में भारत का माल बहुत महँगा हो गया। इस समय तक इंगलैंड वाले भारतीय माल के उपयोग करने में अभ्यस्त हो गये थे। उन्होंने भारत के माल को स्वयं लाने की आवश्यकता अनुभव की। उन्होंने डच लोगों को इस बात के लिए उत्साहित किया कि स्पेन वालों के साथ युद्ध जारी रखें। सन् १५८८

में स्पेनिश-आर्मेडा, जो इंगलैंड के विरुद्ध भेजा गया था, आंधी से बिखर गया और उत्तर-सागर में नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस प्रकार स्पेन की जल-शक्ति जाती रही और भारत का व्यापार भी उनके हाथों से निकल गया।

डचों का उत्थान

पुराने समय में वेनिस और जेनोआ के बंदरगाहों से होकर भारत का माल—फ्रांस, जर्मनी, बेलजियम और हालेंड आदि—यूरोप के विभिन्न देशों में पहुँचा करता था। इस प्रकार ब्रिटिश द्वीप-समूह का नंबर सब से पीछे आता था। परंतु जब भारत का माल पुर्तगाल के बंदरगाहों से यूरोप के भीतरी प्रदेश में जाने लगा, तब भूमध्य-सागर के स्थान पर बिस्के की खाड़ी व्यापारिक केंद्र बन गई। अब भारतीय माल यूरोप में बांटने के लिए अंधमहासागर के पूर्वी भागों में से होकर जाने लगा, इससे फ्रांसीसियों, अंग्रेज़ों और डच लोगों को बड़ा लाभ हुआ। इन लोगों को समुद्री-व्यापार में उन्नति करने का अवसर मिला। इस समय उत्तर-सागर का मछलियों का व्यापार डच लोगों के हाथ था, इसलिए सब से पहले इन्हीं लोगों ने भारत के व्यापार में हिस्सा लेना शुरू किया। वे पुर्तगाल के बंदरगाहों को जाने लगे और वहां से फ्रांस, इंगलैंड, बेलजियम, जर्मनी, स्वीडिन तथा नार्वे के बंदरगाहों में भारतीय माल पहुँचाते थे। जब सन् १५८८ में स्पेन की जल-शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई, तब डच, अंग्रेज़ तथा फ्रांसीसियों ने भारत से सीधा माल लाने के लिए अपनी अपनी कंपनियाँ बना ली थीं। डच इस व्यापार में पहले से ही लगे होने के कारण, वे ही सब से पहले पूर्व में आए। कुछ ही वर्षों में उन्होंने पुर्तगाल वालों की सब बस्तियों पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार स्पेन वालों का सारा पूर्वी व्यापार नष्ट हो गया। डच लोगों ने अधिकतर दक्षिण अफ्रीका, लंका, सुमात्रा, जावा तथा पूर्वीय द्वीप-समूह में अपनी बस्तियाँ स्थापित कीं, क्योंकि वहां

मसाले दुनिया में सब से ज़्यादा पैदा होते हैं। भारत में उन्होंने अपनी बस्तियां बहुत कम बनाईं। डच लोगों के साथ-साथ अंग्रेज़ भी पूर्व आने लगे। परिणाम यह हुआ कि वे डच लोगों के शत्रु हो गए। अंग्रेज़ों ने भी ईस्ट इंडीज़ में अपनी बस्तियाँ स्थापित कीं। परंतु सन् १६२८ में अंबोयना (Amboyna) में डच लोगों ने बहुत से अंग्रेज़ व्यापारियों को मार डाला और उन्हें इन द्वीपों से भगा दिया। इस घटना के बाद अंग्रेज़ व्यापारियों ने अपना ध्यान प्रायः भारत की ही ओर केंद्रित रखा। भारत में डच लोगों की मुख्य कोठी चिंसुरा (बंगाल) में थी।

अंग्रेज़ों की बस्तियाँ

सन् १६०० में लंदन के कुछ व्यापारी महारानी एलिज़बेथ के पास गए और उन्होंने भारत के साथ व्यापार करने के लिए आज्ञा पत्र (Charter) के लिए प्रार्थना की। उनकी प्राथना मान ली गई और तब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की गई। सन् १६१२ में अंग्रेज़ों ने सूरत में पहले पहल अपनी बस्ती स्थापित की। जहांगीर के दरबार में अंग्रेज़ राजदूत थाम्स रो ने मुग़ल-राज्य में अंग्रेज़ों के व्यापार करने के लिए कुछ व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कर ली थीं। सन् १६२८ में पूर्वी-तट पर मसुलीपटम में उन्होंने अपनी बस्ती स्थापित की। सन् १६३४ में बंगाल के सूबेदार शाहशुजा से उन्हें हुगली में व्यापारिक बस्ती बनाने की आज्ञा मिली। सन् १६३६ में दक्षिण में उन्होंने चंद्रगिरि के राजा रंगा रायूलू से, जो विजयनगर के प्राचीन राजाओं का वंशज था, थोड़ी-सी भूमि ख़रीदी, जिस पर वर्तमान मद्रास बसा हुआ है। सन् १६६८ में इंगलैंड के बादशाह चार्ल्स द्वितीय ने बंबई का द्वीप, जो उसे पुर्तगाल की राजकुमारी कैथेराइन ब्रैगैंज़ा के साथ विवाह होने पर दहेज़ में मिला था, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को दे दिया। सन् १६८० में मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब ने उन्हें एक आज्ञा-पत्र द्वारा बंगाल प्रांत में व्यापार करने की आज्ञा दी। परंतु १६८६ में किसी कारणवश

अंग्रेज़ों ने उन जहाज़ों पर कब्ज़ा कर लिया, जिनमें मुसलमान हाजी सूरत से मक्का को हज के लिए जा रहे थे, और इधर बंगाल की खाड़ी पर बसे चटगांव नगर पर भी आक्रमण किया। औरंगज़ेब इस पर बहुत बिगड़ा और अंग्रेज़ों को बंगाल से निकाल दिया। कुछ दिनों के बाद औरंगज़ेब ने उन्हें फिर देश में व्यापार करने की मंज़ूरी दे दी। परिणाम यह हुआ कि सन् १६९० में कलकत्ता नगर की नींव डाली गई। सन् १६९८ में उन्होंने तीन गांवों की ज़मींदारी प्राप्त की और उन्हीं पर कलकत्ता नगर बसाया गया। सन् १७१५ में उन्होंने मुग़ल-सम्राट् फ़र्रुख़सियर से कलकत्ता के दक्षिण २४ परगना की ज़मींदारी के अधिकार प्राप्त किए। परंतु प्रांतीय सूबेदार मुर्शिदकुली खां ने, जो इस समय तक सर्वथा स्वतंत्र हो गया था, अंग्रेज़ी कंपनी को इन परगनों की ज़मींदारी खरीदने की आज्ञा न दी।

फ्रांसीसी बस्तियां

सब से पहली फ्रांसीसी बस्ती, सन् १६७४ में दक्षिण भारत में पांडिचरी में स्थापित हुई। बंगाल में उन्होंने चंद्रनगर में व्यापारिक बस्ती बनाई। दक्षिण में उनकी दो और बस्तियां थीं—कारीकल और माही।

यूरोप की व्यापारिक कंपनियों का राजनीतिक शक्तियों में बदलना

जब तक मुग़ल-साम्राज्य स्थिर रहा, तब तक इन कंपनियों ने अपनी हलचलें व्यापार तक ही सीमित रखीं। परंतु जब औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल-साम्राज्य शीघ्रतापूर्वक पतन की ओर बढ़ने लगा तब शासन-प्रबंध में सैकड़ों बुराइयां पैदा हो गईं और देश में गड़बड़ फैल गई। राज्य लोगों के जीवन तथा धन की रक्षा करने में असमर्थ हो गया। ऐसी परिस्थिति ने यूरोपियन व्यापारियों को विवश किया कि वे अपनी बस्तियों की रक्षा के लिए क़िले बनाएं और सेना रखें। यहीं से भारतीय सिपाहियों का आरंभ हुआ। इन सिपाहियों को यूरोपियन लोग

ड्रिल व क़वायद कराते और सैनिक शिक्षा देते थे। लड़ाई के आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से इन्हें सज्जित किया गया था। अतः यूरोपियन बस्तियों की रक्षा के लिए इनकी एक बहुत अच्छी सेना तैयार हो गई। जब स्थानीय सरदारों में पारस्परिक लड़ाइयां शुरू हुईं, तब यहां भारतीय सिपाही शत्रु का सामना करने के लिए अधिक योग्य और उपयोगी सिद्ध हुए। इसलिए इन सरदारों ने यूरोपियन व्यापारियों की सैनिक सहायता लेनी शुरू कर दी। इस तरह धीरे-धीरे यूरोप की व्यापारिक कंपनियां देश के राजनीतिक विषयों में भाग लेने लगीं। यूरोपियन व्यापारिक शत्रु-एक दूसरे के राजनीतिक शत्रु भी बन गये।

प्रश्न

१. वास्कोडिगामा पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९३८; भूषण, मैट्रिक १९४१)

२. अलबुकर्क, टामस् स्टिफंस और सर टामस रो पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९४१)

३. भारत की प्रथम यूरोपियन बस्तियों—पोर्चगीज़, डच, अंग्रेज़ और फ्रांसीसी—का संक्षिप्त वर्णन करो। (भूषण १९४१)

४. बताओ कि किन परिस्थितियों में पड़ कर यूरोपियन व्यापारी भारत के राजनीतिक विषयों में भाग लेने लगे।

दूसरा अध्याय

मराठों का साम्राज्य १७१९—१७६१

सन् १७०७ में औरंगज़ेब के मरने पर उसके बेटे में तख्त के

पश्चिम भारत में मराठा स्वराज्य

लिए लड़ाई छिड़ गई। शाहज़ादा मुअज्ज़म ने, जो उस समय काबुल का शासक था, उत्तर की ओर से कूच कर दिया। शाहज़ादा आज़म मालवा की सेना तथा अपने बाप औरंगज़ेब की बची-खुची सेना को लेकर दक्षिण से उत्तर को आगरा की तरफ़ बढ़ा। इस समय तक दक्षिण में मराठों का दमन न होने पाया था, बल्कि दिन प्रतिदिन वे ज़ोर पकड़ते जाते थे। डर था कि शाही सेनाओं के उत्तर की ओर जाते ही सारे दक्षिण पर मराठे अधिकार कर लेंगे और दक्षिण-प्रदेश मुग़ल-शासन से सदैव के लिए निकल जायगा। ऐसा समझ कर दक्षिण के सूबेदार ज़ुलफ़िक़ार खां ने शाहज़ादा आज़म को सलाह दी कि साहू को छोड़ दो और उसे सतारा तथा कोलहापुर का राजा मान लो। आज़म ने उत्तर को लौटते समय साहू को इसके साथ-साथ गोंडवाना, गुजरात-काठियावाड़, तंजौर की जागीरें भी सौंप दीं और दक्षिण के ६ मुग़ल परगनों में चौथ तथा सर्देशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया। बदले में साहू ने दक्षिण में शांति रखने की ज़िम्मेवारी ली। परंतु राज्य पाने के लिए लड़े जाने वाले इस युद्ध में शाहज़ादा आज़म और शाहज़ादा कामबख़्श दोनों मारे गए और शाहज़ादा मुअज्ज़म शाहआलम का नाम धारण कर हिंदुस्तान की गद्दी पर बैठा। ज़ुलफ़िक़ार खां को क्षमा कर दिया गया और नए सम्राट् की नौकरी में ले लिया गया। ज़ुलफ़िक़ार खां की सलाह पर नए बादशाह शाहआलम ने भी इस शर्त पर साहू को दक्षिण के ६ मुग़ल सूबों से चौथ वसूल करने का अधिकार दिया कि मुग़ल-सूबेदार दाऊदखां इसे वसूल कर साहू को सौंप दिया करेगा। मुग़लों को विश्वास था कि साहू के छुटकारे और राजा बनने से मराठों में पारस्परिक युद्ध छिड़ जायगा, क्योंकि शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम की विधवा रानी ताराबाई साहू का अधिकार कभी न मानेगी। मुग़लों ने जो सोचा था

वही हुआ। मराठों में कुछ समय के लिए गृह-कलह छिड़ गया। इस गृह-युद्ध में बाला जी विश्वनाथ की सहायता से, जो कोंकण-प्रदेश का ब्राह्मण था, साहू की जीत हुई। साहू सारे मराठा प्रदेश का राजा हुआ और राजाराम के पुत्र शंभाजी को कोलहापुर की जागीर सौंप दी गई। इन सेवाओं के बदले, सन् १७१३ में, बालाजी विश्वनाथ को पेशवा (प्रधान-मंत्री) का पद मिला। सन् १७२० तक वह पेशवा रहा।

चौथ और सर्देशमुखी

चौथ वह कर था, जिसे मराठा लोग उन प्रदेशों से वसूल करते थे, जिन पर वे अपना राजअधिकार समझते थे। यह प्रायः आमदन का चतुर्थांश हुआ करता था। सर्देशमुखी वह कर था, जिसे मराठा लोग उन प्रदेशों से वसूल करते थे जिनमें शांति-स्थापना की वे जिम्मेवारी लेते थे। यह कर आमदन का प्रायः दशांश हुआ करता था।

मराठा और दक्षिण के मुग़ल

शाहआलम ने केवल ५ वर्ष राज्य किया। सन् १७१२ में उसके मरने के बाद सैयद भाइयों की सहायता से फ़र्रुख़सियर सन् १७१३ में गद्दी पर बैठा। फ़र्रुख़सियर शीघ्र ही सैयद भाइयों के शासन से घबड़ा उठा और उनसे छुटकारा पाने के विचार से उसने सन् १७१६ में सैयद हुसैनअली को दक्षिण का सूबेदार बना कर भेज दिया और साथ ही पहले सूबेदार दाऊद खां को गुप्त आदेश दे दिया कि वह हुसैनअली का विरोध करे और उसे मरवा डाले। यह गुप्त आदेश पाकर दाऊद खां, हुसैनअली के दक्षिण में पहुँचते ही, मराठा सरदारों को साथ लेकर उसके विरुद्ध चल पड़ा। लड़ाई हुई, परंतु इस युद्ध में दाऊद खां ही काम आया। हुसैनअली दक्षिण का सूबेदार बन गया। नये सूबेदार का सब से पहला काम मराठों के उत्पात को दबा कर देश में शांति की स्थापना करना था।

उन दिनों सूरत से लेकर समुद्र के किनारे-किनारे बरहानपुर तक पक्की सड़क बनी हुई थी। दक्षिण तथा उत्तर-भारत का सारा व्यापारिक माल इसी मार्ग से सूरत पहुँचा करता था। जब मराठों ने औरंगज़ेब के विरुद्ध स्वाधीनता का संग्राम आरंभ किया, तब उन्होंने यह सड़क बंद कर दी। बिना चौथ लिये कोई भी इस सड़क पर से गुज़रने नहीं पाता था। सैयद हुसेन ने उनके विरुद्ध सेना भेजी, परंतु उसे कोई सफलता न हुई। इस असफलता का समाचार जब फ़र्रुख़सियर को मिला तब उसे बहुत खुशी हुई और गुप्त रूप से उसने मराठा सरदारों को स्वयं अपने सूबेदार के विरुद्ध शस्त्र उठाने के लिए उकसाया। यह संकेत पाकर मराठों ने खुले तौर पर दक्षिण में आक्रमण शुरू कर दिये। हुसेनअली को मराठों से संधि करनी पड़ी। उसने यह मान लिया कि मराठे सरदार स्वयं चौथ वसूल किया करें। उसने उन्हें अपने सूबों में से सर्देशमुखी वसूल करने का भी अधिकार दिया। उसने उन भागों में मराठों की स्वतंत्रता मान ली जो शिवाजी ने जीते थे। इसके बदले राजा साहू ने भी मुग़ल-प्रदेश में से वसूल की चौथ में से १० लाख वार्षिक तथा सर्देशमुखी में से भी उपयुक्त भेंट सूबेदार को देनी स्वीकार की। इसके अतिरिक्त राजा साहू ने सूबेदार की सहायता के लिए अपनी सेना में १५००० सिपाही रखना मान लिया, और दक्षिण में शांति रखने की ज़िम्मेवारी भी ली। मराठों और मुग़लों में हुई यह संधि बादशाह फ़र्रुख़सियर को बहुत ही अपमानजनक जान पड़ी। उसने इसे मानने से इनकार कर दिया और दिल्ली से एक सेना मराठों को दबाने के लिए भेजी। इस संघर्ष में सैयद भाइयों ने सन १७१९ में फ़र्रुख़सियर को मार डाला। वर्ष के अंत में जब मुहम्मदशाह तख़्त पर बैठा, तब करीम-उद्दीन चिन क़िलिच खां, जो आसफ़जाह निज़ाम-उल-मुल्क के नाम से प्रसिद्ध है, मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ। हुसेनअली शाह के साथ हुई मराठों की संधि को नए सम्राट् ने फिर से मान लिया। राजा साहू

को स्वतंत्र राजा स्वीकार किया गया। दक्षिण के ६ मुग़ल सूबों से चौथ और सर्देशमुखी वसूल करने का उसे अधिकार मिला, और इसके साथ ही इन सूबों में उसे २५ सैंकड़ा सैनिक अधिकार भी मिले। इस संधि पर हस्ताक्षर होने के कुछ समय बाद ही सन् १७२० में बाला जी विश्वनाथ का देहांत हो गया। राजा साहू ने उसके स्थान पर उसके पुत्र बाजीराव को पेशवा नियुक्त किया।

पेशवा बाजीराव १७२०-१७४०

बाजीराव मराठा-साम्राज्य का सब से महान् पेशवा माना जाता है। उसके २० वर्ष के प्रबंध-काल में मुग़ल-साम्राज्य की केंद्रीय-शक्ति सब छिन्न-भिन्न हो गई। बाजीराव का सारा समय पड़ोसी राज्यों से लड़ते-भिड़ते ही बीता। (१) सब से पहले उसने अपना ध्यान पश्चिमी समुद्र-तट पर बसे पुर्तगाल-निवासियों की ओर फेरा। सन् १७२४ से लेकर १७३९ तक इन १५ वर्षों में उसने पुर्तगालवालों की सब बस्तियां—सालसिट, चॉल, बसीन, थाना तथा महीम—छीन लीं और गोआ पर भी आक्रमण किया। अब पुर्तगालवालों ने हार कर उससे संधि कर ली। पुर्तगालवालों के पास केवल गोआ, दमन और द्यू के बंदरगाह ही रह गये। (२) पेशवाई संभालते ही बाजीराव ने गुजरात-काठियावाड़ की ओर भी अपना ध्यान फेरा। सन् १७२४ में जब करीम-उद्दीन-चिन क़िलच खां निज़ाम-उल-मुल्क दक्षिण में स्वतंत्र हो बैठा, तब सम्राट् मुहम्मदशाह ने उसे मालवा और गुजरात-काठियावाड़ की सूबेदारी से हटा दिया और दूसरे मुग़ल सरदारों को उन प्रांतों का



पेशवा बाजी राव

सूबेदार बना कर भेज दिया, परंतु नि .ाम-उल-मुल्क के अफ़सरों ने इन नए सूबेदारों को स्वीकार नहीं किया। इस पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ, और मराठा सरदारों को इस संघर्ष में किसी न किसी का पक्ष लेने का अवसर मिला। सन् १७२६ में गुजरात-काठियावाड़ के सूबेदारों ने बाजीराव को चौथ तथा सर्देशमुखी देना मान लिया। सन् १७३५ में इस प्रांत को मराठों ने पूरी तरह से जीत लिया। दामाजी गायकवाड़ ने मुग़लों की राजधानी अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया और बड़ौदा में अपनी राजधानी बनाई। (३) सन् १७३२ में बाजीराव ने पठानों को बुंदेलखंड से निकाल दिया। इस सेवा के बदले में बुंदेल-नरेश महाराज छत्रसाल ने जालौन, झांसी, सागर तथा सिरोंज (भोपाल के पास टोंक रियासत का स्थान) दे दिए। (४) सन् १७३६ में बाजीराव ने मालवा को जीत लिया। (५) सन् १७३८ में मालवा और चंबल के बीच ग्वालियर का प्रदेश उसके हाथ लगा। मलहारराव होलकर उत्तर-मालवा का शासक बनाया गया। इंदौर राजधानी बनाई गई। ऊधाजी पवांर दक्षिण मालवा का शासक नियुक्त हुआ। धार उसकी राजधानी हुई। रानोजी सिंधिया ग्वालियर का शासक बना। (६) पूर्व में बाजीराव को अधिकतर नि .ाम-उल-मुल्क से लड़ना पड़ा। सन् १७३८ में निज़ाम की हार हुई और मराठों ने उन प्रांतों से, जो उसके अधीन थे, चौथ और सर्देशमुखी वसूल की। (७) बाजीराव के समय में ही मराठे गोंडवाना और उड़ीसा की ओर बढ़ने लगे। सन् १७३९ में जब बाजीराव ने सुना कि नादिरशाह ने मुग़लों की शाही सेना को हरा कर दिल्ली को लूट लिया है, तब उसने सब हिंदू और मुस्लिम शक्तियों को इकट्ठा कर नादिरशाह से लड़ने का निश्चय किया। नर्बदा और चंबल के बीच सेनाएं इकट्ठी हो ही रही थीं कि नादिरशाह, मुहम्मदशाह को दिल्ली की गद्दी पर फिर बैठाकर, ईरान लौट गया। सन् १७४० में बाजीराव की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना। वह एक

लंबे डील-डौल का, गोरा और सुंदर युवक था, परंतु था बहुत घमंडी। सब लोग उसकी योग्यता का आदर करते थे, परंतु उसे कोई चाहता न था। अपने प्रबंध-काल में उसने मराठों को देश की सब से महान् शक्ति बना दिया। उसने डच और पुर्तगाल वालों की शक्ति को दबा दिया और मुग़ल-शक्ति को पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने निज़ाम जैसे योग्य शासक की शक्ति को भी दुर्बल बना दिया।

बालाजी बाजीराव १७४०—१७६१

बाजीराव ने तो अपना ध्यान दक्षिण (दकन) तथा उत्तर-भारत तक ही सीमित रखा था, परंतु उसके पुत्र बालाजी बाजीराव ने दक्षिण-भारत में भी अपनी हलचलें शुरू कर दीं। दक्षिण में सब से पहला मराठा-आक्रमण शिवाजी के समय में हुआ था। सन् १७२६ में बाजीराव के समय में दूसरा आक्रमण भी किया गया। परंतु जब बालाजी बाजीराव पेशवा बना तब दक्षिण-भारत को अपने अधिकार में लाना मराठों ने अपनी नीति बना ली। सब से पहले कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच के प्रदेश को जीता गया। इसके बाद मराठों ने मैसूर पर आक्रमण किया। वहां से बहुत-सा धन उनके हाथ लगा। सन् १७५६ में शोलापुर, बेलगांव और हुबली के ज़िले मराठों के हाथ आ गए। सन् १७५९ में मराठे फिर मैसूर की ओर बढ़े परंतु उस समय मैसूर राज्य पर हैदर अली का प्रभुत्व था। उसने मराठों को आगे बढ़ने न दिया। बालाजी बाजीराव के समय में मराठे निज़ाम से बराबर लड़ते रहे। आसफ़जाह निज़ाम-उल-मुल्क सन् १७४८ में मर चुका था, और उसके मरने के तुरंत बाद उसके लड़कों में गद्दी के लिए लड़ाई छिड़ गई थी। उस समय मराठे इन भ्रातृ-युद्ध से लाभ नहीं उठा सके थे। राजा साहू सन् १७४९ में परलोक सिधार चुका था। परंतु शीघ्र ही मराठे घरेलू राजनीतिक उलझनों से छूट गए, और उन्होंने हैदराबाद के मामलों में भाग लेना शुरू कर दिया। सन् १७५२ में खान-

देश तथा बरार के कुछ ज़िले मराठों के अधिकार में आ गए। सन् १७५९ में उन्होंने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया। इस पर मराठों और निज़ाम में युद्ध छिड़ गया। सन् १७६० में उदगिर की लड़ाई में निज़ाम की पूरी हार हुई। इस जीत से अहमदनगर, बीजापुर, तथा असीरगढ़ और शिवनेर के क़िलों पर मराठों का क़ब्ज़ा हो गया। बालाजी बाजीराव के समय में मराठों ने बंगाल पर भी आक्रमण किया। सन् १७४५ में मराठों ने देवगढ़ और चांदा के गोंड राज्यों को जीता। सन् १७४८ में गढ़मंडल पर क़ब्ज़ा किया। सन् १७५१ में उड़ीसा को जीता। इस पर दक्षिण, पूरब, दकन तथा मध्य-भारत में अपनी शक्ति को सब से प्रबल बनाकर मराठों ने फिर उत्तर-भारत की ओर अपना ध्यान किया। इस समय रुहेले ज़ोर पकड़ रहे थे। सन् १७५१ में अवध के नवाब वज़ीर सफ़दर जंग ने रुहेलों के विरुद्ध मराठों की सहायता ली। होलकर और सिंधिया उनके विरुद्ध भेजे गए। रुहेले हार गए और वे कुमाऊं की पहाड़ियों की ओर भाग गए। मराठे अभी रुहेलखंड में ही थे कि सन् १७४८ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर दिया। सफ़दरजंग और उसके सहायक मराठों के दिल्ली पहुँचने से पहले ही मुग़ल सम्राट् ने लाहौर और मुलतान अब्दाली को सौंप दिए और वह कंधार वापिस चला गया। इस पर मराठे सरदार—सिंधिया और होलकर—दकन लौट गए। सन् १७५४ में दिल्ली के मुग़ल अधिकारियों ने भरतपुर के जाटों के विरुद्ध मराठों की फिर सहायता ली। परंतु इसी समय दिल्ली-सम्राट् अहमदशाह को उसके वज़ीर शहाब-उद्दीन ने मार डाला और जहांदारशाह के बेटे आलमगीर को गद्दी पर बैठाया। आलमगीर रुहेला सरदार नजीब-उद्दौला के हाथों की कठपुतली हो गया। इस पर शहाब-उद्दीन ने सन् १७५७ में मराठों से फिर सहायता मांगी। बालाजी बाजीराव ने अपने भाई रघुनाथराव को, जो इस समय दक्खन में था, दिल्ली भेजा। दिल्ली पर मराठों का अधिकार

हो गया। इसी समय जालंधर के सरदार अदीनबेग ने अब्दालियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसने मराठों की सहायता के लिए प्रार्थना की। रघुनाथराव ने तत्काल पंजाब की ओर कूच कर दिया। सरहिंद के पास उसने एक अब्दाली-सूबेदार को हराया और सन् १७५८ में लाहौर में प्रवेश किया। पंजाब के शासक शाहजादा तैमूर को, जो अहमदशाह अब्दाली का लड़का था, पंजाब से निकाल दिया गया और सिंधु नदी तक सारे पंजाब पर मराठों का अधिकार हो गया। परंतु इन सब लड़ाइयों में मराठों का बहुत-सा रुपया खर्च हुआ। अदीनबेग को मराठों की ओर से पंजाब का सूबेदार बना कर, जँकोजी सिंधिया को दिल्ली में छोड़ कर, दत्ताजी सिंधिया को ग्वालियर का और मलहारराव होल्कर को इंदौर का शासक नियुक्त कर रघुनाथराव दक्कन वापिस चला गया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई १७६१

सन् १७५९ में शहाब-उद्दीन ने फिर रुहेलों पर आक्रमण किया और मराठों को सहायता के लिए बुलाया। परंतु इस बार रुहेले और अवध का नवाब वज़ीर मिल गये और उन्होंने अहमदशाह अब्दाली को भी सहायता के लिए बुलाया। आलमगीर भी शहाब-उद्दीन से नाराज़ था। उसने भी गुप्त रूप से अब्दाली बादशाह को आने के लिए लिखा। इधर उसके बेटे तैमूर को मराठों ने पंजाब से निकाल ही दिया था। इन सब बातों से अब्दाली ने भारत पर फिर आक्रमण करने की ठान ली। जब शहाब-उद्दीन को यह मालूम हुआ कि आलमगीर और अब्दाली में गुप्त पत्र-व्यवहार हुआ है, तब उसने आलमगीर को मरवा डाला और भारत के भाग्य का निर्णय करने के लिए मराठों और अब्दाली को छोड़ कर स्वयं एक तरफ़ हो गया। परंतु अब की बार मराठों की सेना की देख-रेख अनुभवहीन व्यक्तियों के हाथों में थी। पहले की लड़ाइयों में अधिक ख़र्च कर देने से इस बार

रघुनाथराव को सेना की बागडोर नहीं सौंपी गई। मलहारराव होलकर और भरतपुर के जाट सरदार सूरजमल जैसे अनुभवी सैनिकों के परामर्श को घृणापूर्वक ठुकरा दिया गया। इधर नव-युवक सेनापति सदाशिवराव के असहनीय व्यवहारों से राजपूत भी बहुत नाराज़ थे। इसलिए इनमें से किसी ने भी मराठों का साथ नहीं दिया। सेना भी बिलकुल अयोग्य और भारी थी। इसमें स्त्रियाँ, बच्चे, दुकानदार आदि अनावश्यक रूप से भरे पड़े थे। इतनी बड़ी सेना और उसके पिछलगुओं के लिए बहुत-सी खाने-पीने की सामग्री की आवश्यकता थी। परंतु इसका कोई ठीक प्रबंध न था। ऐसी परिस्थिति में मराठों के लिए यह आवश्यक था कि वे दक्षिण में अपना संबंध बनाए रखते, परंतु इसके बदले सदाशिवराव जोश में आगे करनाल तक बढ़ता चला गया, इधर अब्दाली ने सहारनपुर के पास जमुना को पार कर रुहेलों और अवध के नवाब वज़ीर की सेनाओं से संबंध बना लिया। जब सदाशिवराव दिल्ली से निकल कर करनाल की ओर बढ़ गया, तब अब्दाली ने अपने सहायकों के साथ नीचे की ओर जमुना नदी को फिर पार किया और चुपके से दिल्ली पहुँच गया। अब दक्षिण में मराठों का

बालाजी बाजीराव की मृत्यु

कि कुछ ही महीनों के अंदर वह चल बसा। मराठा-शक्ति को, जो कुछ ही महीने पहले सार्वभौम-शक्ति बन गई थी, विनाशकारी आघात लगा। मराठा-साम्राज्य की एकता और संघ-शक्ति नष्ट हो गई। पेशवाओं के महान व्यक्तित्व के कारण मराठा-साम्राज्य में राजा तो पहले ही अपना प्रभाव खो चुका था, अब पेशवाओं का प्रभुत्व भी जाता रहा। बालाजी बाजीराव के समय तक सब मराठा सरदारों और सूबेदारों पर पेशवाओं का पूरा नियंत्रण था, कोई सरदार उन्हें नाराज़ करने का साहस न कर सकता था, परंतु बालाजी बाजीराव के मरने के बाद स्थिति बदल गई। अधिकांश मराठा सरदारों का मत था कि विश्वासराव और सदाशिवराव की अनुभव-हीनता और अकड़ के कारण ही उन्हें पानीपत की लड़ाई में हार का मुँह देखना पड़ा है। बहुतों का यह भी विचार था कि ब्राह्मण पेशवा के प्रभुत्व के कारण ही उन्हें ये बुरे दिन देखने पड़े हैं। पेशवा के सम्मान को भयंकर चोट पहुँची। प्रत्येक मराठा सरदार अपनी मनमानी करने लगा। मराठा-साम्राज्य की केंद्रीय शक्ति क्षीण हो गई। मराठों का एकच्छत्र साम्राज्य छोटे-छोटे मराठा-सरदारों की क्रीड़ा-भूमि बन गया। साम्राज्य में प्रत्येक सरदार को समान-अधिकार थे। पेशवा अब एकच्छत्र साम्राज्य का प्रधान मंत्री होने के बदले, इस राज्य-समूह (Confederation) का प्रधान बना। अब वह साम्राज्य के सब सरदारों को आज्ञाएँ जारी नहीं कर सकता था, बल्कि उसे स्वयं बहुमत के पीछे चलना पड़ता था। यह मराठा राज्य-समूह की प्रणाली भी मराठा-शक्ति को लगभग आधी शताब्दी तक बनाए रख सकी। संभव था कि यह मराठा-संघ-शक्ति मराठों की शक्ति को फिर से भारत भर में स्थापित करने में सफल होती, परंतु केंद्रीय शक्ति के दुर्बल होने और एक ऐसी शक्ति से सामना होने के कारण जो कूट-नीतिज्ञता में निपुण थी, इस सफलता

न मिली। यह संघ-शक्ति १७६१ से १८०५ तक स्थिर रही और इसके बाद सारी शक्ति ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में चली गई।

पेशवाओं की वंशावली

बालाजी विश्वनाथ (१७१३-२०)
|
बाजीराव पहला (१७२०-४०)
|
- बालाजी बाजीराव (१७४०-६१)
  - विश्वास राव (मारा गया १७६१)
  - माधव राव (१७६१-७२)
  - नारायण राव (१७७२-७३)
    - माधवराव नारायण (१७७४-६५)
- रघुनाथ राव
  - बाजीराव द्वितीय (१७६५-१८१८)

प्रश्न

तीसरा अध्याय

मराठा-राज्य-संघ १७६१-१८०५

मराठे पानीपत की लड़ाई के बाद

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि अधिकांश मराठा-सरदारों का यह विचार था कि पानीपत में उनकी पराजय साम्राज्य में ब्राह्मण-प्रभुत्व के कारण ही हुई है। इसलिए मराठा-सरदारों में पेशवा के विरुद्ध विद्रोही-भाव उठ खड़े हुए। ऐसी स्थिति में पड़ोसी राज्यों को अवसर मिला कि वे मराठों द्वारा जीते गए अपने पहले प्रदेशों को फिर से ले लें। पूर्व में निज़ामअली ने उद्गिर की हार का बदला चुकाने और सन् १७६० में खोये गए अपने प्रदेशों को वापस लेने का निश्चय किया। दक्षिण में हैदरअली ने कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच के खोये हुए मैसूर के प्रदेश को वापस लेने पर कमर कसी। ऐसे ही समय में बालाजी बाजीराव के दूसरे पुत्र माधवराव, जो अभी १६ वर्ष का बालक ही था, पेशवा की गद्दी पर बैठा।

पेशवा माधवराव १७६१-१७७२

माधवराव के पेशवा होने पर उसका चचा रघुनाथराव राज-कार्य में सहायता देने के लिये उसका संरक्षक बना। माधवराव ने गद्दी पर बैठते ही अपने चचा के नियंत्रण से छुटकारा पाना चाहा। इस पर रघुनाथराव विद्रोह कर निज़ाम-उल-मुल्क से जा मिला और उद्गिर की लड़ाई में मराठों ने ६२ लाख का जो प्रदेश जीत लिया था, उसमें से ५२ लाख का प्रदेश हैदराबाद को लौटाने की घोषणा कर दी। इसी समय हैदरअली ने मराठा-सरदार मुरारीराव को गुटी से खदेड़ दिया और कृष्णा तथा तुंगभद्रा के बीच के प्रदेश पर आक्रमण

पड़ा। यही नहीं, बल्कि उसे ३६ लाख रुपया युद्ध के हरजाने में देना पड़ा और यह भी मानना पड़ा कि वह १४ लाख वार्षिक कर माधवराव को देता रहेगा। निज़ामअली से निपट कर माधवराव ने जानोजी भोंसला से भी निपटना चाहा। १७६५ से लेकर १७६६ तक उसके प्रदेश पर बराबर आक्रमण किए और वे सब प्रदेश उससे छीन लिए गए जो उसे निज़ाम के विरुद्ध लड़ने के बदले दिये गये थे। जानोजी भोंसला अब पेशवा के अधीन केवल एक जागीरदार रह गया और बाहरी शक्तियों से उसका सारा स्वतंत्र संसर्ग जाता रहा। इस प्रकार दक्षिण में अपनी स्थिति दृढ़ कर माधवराव ने उत्तर-भारत की ओर अपना ध्यान फेरा। मलहारराव होलकर के मरने पर उसकी विधवा महारानी अहल्याबाई इंदौर में राज करने लगी। उसने तुकाजी को गोद ले लिया। पेशवा ने माधवराव सिंधिया तथा तुकाजी होलकर को, जो मालवा में स्थित थे, दिल्ली की ओर बढ़ने का आदेश दिया। इन दोनों सरदारों ने चंबल नदी को पार कर राजपूतों को जीता और उन पर वार्षिक कर लगा दिया। इसके बाद इन दोनों ने शाहआलम दूसरे को, जो इलाहाबाद में निर्वासन का जीवन बिता रहा था, दिल्ली वापस लाकर, गद्दी पर बैठाने और उसकी आड़ में सारे देश पर मराठा-साम्राज्य की नींव डालने का निश्चय किया। माधवराव सिंधिया शाहआलम से मिला। शाहआलम ने रूप से मराठों की सहायता का स्वागत किया और इस सेवा के बदले में इलाहाबाद और कारा के प्रदेश देना स्वीकार किये। सन् १७७२ में शाहआलम को दिल्ली की गद्दी पर फिर से बिठा दिया गया। उसकी अनुमति से मराठों ने रुहेलखंड पर चढ़ाई की और रुहेलों के प्रदेश पर अधिकार कर उसे मराठा-शासन में मिला लिया। ठीक इसी समय दक्षिण से समाचार मिला कि माधवराव मर गया। यह समाचार पाते ही मराठा-सरदारों ने रुहेलों से भारी रकम लेकर रुहेलखंड उन्हें लौटा दिया और स्वयं दक्षिण वापस चले गए। माधवराव के मरने पर

उसका छोटा भाई नारायणराव पेशवा की गद्दी पर बैठा। परंतु एक वर्ष के अंदर रघुनाथराव के कहने से उसे मार डाला गया। पेशवा की गद्दी के लिए पारस्परिक युद्ध छिड़ गया।

पेशवा माधवराव नारायण १७७४—१७९५

जब नारायणराव की हत्या की गई तब उसकी स्त्री गर्भवती थी। कुछ ही महीनों के बाद उसने एक लड़के को जन्म दिया। माधवराव नारायण उसका नाम रक्खा गया। परंतु इस लड़के के जन्म के पहले ही रघुनाथराव ने अपने को पेशवा घोषित कर दिया था। वह पेशवा बालाजी बाजीराव का छोटा भाई था, और, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, अपने भाई के समय में उसने उत्तर-भारत पर विजय पाई थी। भाई के मरने पर वह अपने भतीजे माधवराव का संरक्षक बना और अब उसने अपने आपको पेशवा घोषित कर दिया। परंतु पूना के सब मराठा-सरदार उसके विरुद्ध थे। रघुनाथराव उत्तर की ओर बढ़ा और होलकर तथा सिंधिया से, जो इस समय उत्तर से लौट रहे थे, सहायता की प्रार्थना की। यही नहीं बल्कि उसने बंबई के अंग्रेज़ों से भी सहायता माँगी। रघुनाथराव और बंबई के अंग्रेज़ अधिकारियों के बीच सन् १७७५ में सूरत में एक संधि हो गई। इस संधि के अनुसार अंग्रेज़ों को बंबई के पास बसीन और सालसट के द्वीप मिलने का निश्चय हो गया। मराठों ने इन द्वीपों को सन् १७३७ में पुर्तगाल वालों से भारी हानि उठा कर जीता था। जब होलकर और सिंधिया को मालूम हुआ कि अंग्रेज़-अधिकारियों से संधि करते समय रघुनाथराव ने मराठों के उन त्यागों का कोई विचार नहीं किया है, तब उन्होंने रघुनाथराव को सहायता देने से इनकार कर दिया। उन्होंने पूना के उन मराठा सरदारों का साथ देना स्वीकार किया जो कि माधवराव के पुत्र माधवराव नारायण के पक्ष की सहायता कर रहे थे। बंगाल कौंसिल भी इस संधि से सहमत न थी। पुरंदर में नाना

फड़नवीस और अंग्रेज़ों के बीच एक संधि हुई जिससे अंग्रेज़ों ने सालसट पर अधिकार मिलने की शर्त पर रघुनाथराव का साथ छोड़ दिया। परंतु कंपनी के डाइरेक्टरों ने सूरत की संधि ही स्वीकार की। अंग्रेज़ों ने रघुनाथराव का फिर पक्ष लिया। परंतु बंबई से रघुनाथराव की सहायता के लिए आने वाली अंग्रेज़ी सेना हार गई। अंग्रेज़ी सेना के सेनापति को बाड़गांव के पास अपनी बंदूकें तालाब में फेंक देनी पड़ीं और सन् १७७३ से लेकर अंग्रेज़ी सेनाओं ने जिन-जिन स्थानों को जीता था, सब वापस देने पड़े।

अंग्रेज़ों और मराठों की पहली लड़ाई १७७५-८२

सन् १७८० में वारेन हेस्टिंग्ज़ ने इस अपमान को दूर करने का निश्चय किया। उसने एक अंग्रेज़ी सेना बंगाल से बंबई भेजी। पश्चिम में बंबई के अंग्रेज़-अधिकारियों ने गुजरात, काठियावाड़ पर चढ़ाई शुरू कर दी। मध्य-भारत में गोहद के राजा को, जो पेशवा का जागीरदार था, अंग्रेज़ों ने अपनी तरफ़ मिला लिया। सिंधिया के प्रदेश पर आक्रमण कर उसकी राजधानी ग्वालियर अंग्रेज़ों ने ले ली। उन्होंने नागपुर के भोंसला को गढ़मंडल के प्रदेशों पर, जो पेशवा के अधीन थे, अधिकार दिलाने के लिए उसे सहायता देना स्वीकार किया और इस प्रकार उसे अपनी तरफ़ कर लिया। इस समय पूना के मराठा-दरबार में नाना फड़नवीस का प्रभुत्व था। वह भी एक महान् कूटनीतिज्ञ था। उसने मैसूर के हैदरअली को अपनी ओर मिला लिया। जब ग्वालियर पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया, तब सिंधिया को इससे अपनी चिंता हो गई। इतना होने पर भी अंग्रेज़ों को अधिक सफलता नहीं मिली। हैदरअली ने उन्हें दक्षिण में फंसाए रखा और इधर उत्तर में स्वयं मराठों ने उनसे लोहा लिया। अंत में सन् १७८२ में दोनों के बीच सालबाई की संधि हो गई। अंग्रेज़ अधिकारी इस बात पर सहमत हुए कि वे पेशवाई पाने के लिए रघुनाथराव की

सहायता नहीं करेंगे। एलफेंटा और सालसट के द्वीप अंग्रेज़ों के पास ही रहने दिए गए। मराठों ने यह बात भी मान ली कि वे मैसूर के सुलतान से वह प्रदेश दिलवा देंगे जो उसने अंग्रेज़ों अथवा नवाब अरकाट से जीते थे। इस प्रकार अंग्रेज़ों और मराठों की लड़ाई समाप्त हुई। मराठों का उद्देश सफल हुआ। रघुनाथराव पेशवा न हो सका और अंग्रेज़ों ने उसकी सहायता से हाथ खींच लिया। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को भी इस लड़ाई से यह लाभ हुआ कि एलफेंटा और सालसट के द्वीप उसे मिल गए जो बंबई के बिलकुल पास ही थे। इससे उन्हें बंबई में शत्रुओं का सब भय जाता रहा।

मराठा-मैसूर लड़ाई

अभी अंग्रेज़ों और मराठों की लड़ाई हो ही रही थी कि सन् १७८२ में हैदरअली मर गया। उसके मरने पर उसका बेटा फतहअली खां, जो इतिहास में टीपू सुलतान के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, मैसूर की गद्दी पर बैठा। सालबाई की संधि होने के कुछ ही समय बाद टीपू सुलतान ने मराठा-प्रदेश पर चढ़ाई कर दी। तुंगभद्रा और कृष्णा नदियों के बीच के देश पर उसने आक्रमण करने शुरू कर दिए। अंत में नाना फड़नवीस ने हैदराबाद के निज़ामअली के साथ मिल कर मैसूर पर चढ़ाई की। सन् १७८७ में टीपू सुलतान को विवश संधि करनी पड़ी। उसने मराठों और निज़ामअली को कुछ प्रदेश दिए और साथ ही ४५ लाख का हरजाना मराठों को दिया। इसके बाद उसने अंग्रेज़ी प्रदेशों को हड़प कर दक्षिण-भारत में अपने राज्य को फैलाने के विचार से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर अपना ध्यान किया। टर्की के सुलतान और फ्रांस के बादशाह को उसने सहायता के लिए लिखा। टर्की के सुलतान ने तो उसे सहायता देने से इनकार कर दिया परंतु फ्रांसीसियों ने उसे सहायता की आशा दिलाई। सुलतान टीपू ने अब मलाबार-तट के प्रदेशों पर अधिकार करने का विचार किया और इसी

उद्देश से उसने सन् १७८६ में ट्रावन्कोर के ज़िलों पर आक्रमण करने आरंभ कर दिए। इससे पहले ही अंग्रेज़ों और ट्रावन्कोर दरबार में संधि हो चुकी थी, जिससे अंग्रेज़ इस बात पर बाध्य थे कि यदि ट्रावन्कोर पर कोई आक्रमण करे तो वे दरबार को सहायता दें। परंतु मद्रास के अंग्रेज़ अधिकारी ट्रावन्कोर की पूरी पूरी सहायता नहीं कर सकते थे। इसलिए सन् १७६० में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, हैदराबाद और मराठा इन तीनों में एक संधि हुई, जिसमें यह बात निश्चय हुई कि यदि वे जीत गये तो जीते हुए प्रदेश को बराबर बराबर बांट लेंगे। उधर ट्रावन्कोर की सेनाओं ने भी टीपू सुलतान का डट कर सामना किया और वह उस राज्य पर अधिकार न जमा सका। टीपू सुलतान अभी ट्रावन्कोर में उलझ ही रहा था कि मराठों, निज़ामअली तथा अंग्रेज़ों ने मैसूर पर आक्रमण कर दिया। लार्ड कार्नवालिस स्वयं अंग्रेज़ी सेना का सेनापति बना, परंतु शत्रु ने उसकी सेनाओं को चारों ओर से घेर लिया और सिपाहियों में हैज़ा भी फूट निकला। अंत में उसे अपनी तोपें कावेरी नदी में फेंक कर बंगलौर की ओर वापस लौटना पड़ा। ठीक इसी समय मराठा सेनाएँ लार्ड कार्नवालिस की सहायता को पहुँच गई। अब दोनों ने श्रृंगापटम् पर आक्रमण किया। टीपू सुलतान को विवश संधि करनी पड़ी। सन १७६२ में इस शर्त पर संधि की गई कि टीपू सुलतान अपना आधा राज्य विजयी शक्तियों को सौंप दे। इस लड़ाई में कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच का सारा प्रदेश मराठों के हाथ आया।

उत्तर-भारत मे मराठा-राज्य

पहले बताया जा चुका है कि सन् १७७२ में जब माधवराव पेशवा की मृत्यु हुई, तब मराठा सेनाएँ उत्तर-भारत से दक्षिण लौट आई थीं। सन् १७८२ में मराठों को फिर दिल्ली बुलाया गया। माधवराव सिंधिया ने उसी समय चंबल नदी को पार कर आगरा पर अधिकार कर लिया। अब शाहआलम ने माधवराव सिंधिया को वकील-

सहायता नहीं करेंगे। एलफेंटा और सालसट के द्वीप अंग्रेज़ों के पास ही रहने दिए गए। मराठों ने यह बात भी मान ली कि वे मैसूर के सुलतान से वह प्रदेश दिलवा देंगे जो उसने अंग्रेज़ों अथवा नवाब अरकाट से जीते थे। इस प्रकार अंग्रेज़ों और मराठों की लड़ाई समाप्त हुई। मराठों का उद्देश सफल हुआ। रघुनाथराव पेशवा न हो सका और अंग्रेज़ों ने उसकी सहायता से हाथ खींच लिया। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को भी इस लड़ाई से यह लाभ हुआ कि एलफेंटा और सालसट के द्वीप उसे मिल गए जो बंबई के बिलकुल पास ही थे। इससे उन्हें बंबई में शत्रुओं का सब भय जाता रहा।

मराठा-मैसूर लड़ाई

अभी अंग्रेज़ों और मराठों की लड़ाई हो ही रही थी कि सन् १७८२ में हैदरअली मर गया। उसके मरने पर उसका बेटा फतहअली खां, जो इतिहास में टीपू सुलतान के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, मैसूर की गद्दी पर बैठा। सालबाई की संधि होने के कुछ ही समय बाद टीपू सुलतान ने मराठा-प्रदेश पर चढ़ाई कर दी। तुंगभद्रा और कृष्णा नदियों के बीच के देश पर उसने आक्रमण करने शुरू कर दिए। अंत में नाना फड़नवीस ने हैदराबाद के निज़ाम अली के साथ मिल कर मैसूर पर चढ़ाई की। सन् १७८७ में टीपू सुलतान को विवश संधि करनी पड़ी। उसने मराठों और निज़ामअली को कुछ प्रदेश दिए और साथ ही ४५ लाख का हरजाना मराठों को दिया। इसके बाद उसने अंग्रेज़ी प्रदेशों को हड़प कर दक्षिण-भारत में अपने राज्य को फैलाने के विचार से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर अपना ध्यान किया। टर्की के सुलतान और फ्रांस के बादशाह को उसने सहायता के लिए लिखा। टर्की के सुलतान ने तो उसे सहायता देने से इनकार कर दिया परंतु फ्रांसीसियों ने उसे सहायता की आशा दिलाई। सुलतान टीपू ने अब मलाबार-तट के प्रदेशों पर अधिकार करने का विचार किया और इसी

उद्देश से उसने सन् १७८६ में ट्रावन्कोर के ज़िलों पर आक्रमण करने आरंभ कर दिए। इससे पहले ही अंग्रेज़ों और ट्रावन्कोर दरबार में संधि हो चुकी थी, जिससे अंग्रेज़ इस बात पर बाध्य थे कि यदि ट्रावन्कोर पर कोई आक्रमण करे तो वे दरबार को सहायता दें। परंतु मद्रास के अंग्रेज़ अधिकारी ट्रावन्कोर की पूरी पूरी सहायता नहीं कर सकते थे। इसलिए सन् १७६० में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, हैदराबाद और मराठा इन तीनों में एक संधि हुई, जिसमें यह बात निश्चय हुई कि यदि वे जीत गये तो जीते हुए प्रदेश को बराबर बराबर बांट लेंगे। उधर ट्रावन्कोर की सेनाओं ने भी टीपू सुलतान का डट कर सामना किया और वह उस राज्य पर अधिकार न जमा सका। टीपू सुलतान अभी ट्रावन्कोर में उलझ ही रहा था कि मराठों, निज़ामअली तथा अंग्रेज़ों ने मैसूर पर आक्रमण कर दिया। लार्ड कार्नवालिस स्वयं अंग्रेज़ी सेना का सेनापति बना, परंतु शत्रु ने उसकी सेनाओं को चारों ओर से घेर लिया और सिपाहियों में हैज़ा भी फूट निकला। अंत में उसे अपनी तोपें कावेरी नदी में फेंक कर बंगलौर की ओर वापस लौटना पड़ा। ठीक इसी समय मराठा सेनाएँ लार्ड कार्नवालिस की सहायता को पहुँच गईं। अब दोनों ने श्रृंगापटम् पर आक्रमण किया। टीपू सुलतान को विवश संधि करनी पड़ी। सन् १७६२ में इस शर्त पर संधि की गई कि टीपू सुलतान अपना आधा राज्य विजयी शक्तियों को सौंप दे। इस लड़ाई में कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच का सारा प्रदेश मराठों के हाथ आया।

उत्तर-भारत में मराठा-राज्य

पहले बताया जा चुका है कि सन् १७७२ में जब माधवराव पेशवा की मृत्यु हुई, तब मराठा सेनाएँ उत्तर-भारत से दक्षिण लौट आई थीं। सन् १७८२ में मराठों को फिर दिल्ली बुलाया गया। माधवराव सिंधिया ने उसी समय चंबल नदी को पार कर आगरा पर अधिकार कर लिया। अब शाहआलम ने माधवराव सिंधिया को अमीर-

उल-उमरा का पद देना चाहा। माधवराव ने यह पद स्वयं लेना न माना, परंतु पेशवा की ओर से वकील-ए-मुतलक का डिप्टी होना मान लिया। उसकी यह बात मान ली गई और तब शाहआलम ने सब शाही सेनाओं की बागडोर सिंधिया के हाथ सौंप दी। सिंधिया ने बादशाह को उसके अपने खर्च के लिए ६५ हज़ार रुपये मासिक देना स्वीकार किया। इस समय दिल्ली की आर्थिक दशा अत्यंत शोचनीय थी। खजाने में रुपया न था। साम्राज्य के सब सूबे स्वतंत्र हो चुके थे। न तो प्रांतों से कर आता था और न ही केंद्रीय प्रदेशों से राजधानी को कोई आमदन थी। माधवराव सिंधिया के पास अपने सैनिकों को वेतन देने को रुपया न था। वह बादशाह को देने के लिए ६५ हज़ार रुपया महीना कहां से लाता ? ऐसी परिस्थितियों में उसके पास सिवाय इसके और कोई उपाय न था कि वह केंद्रीय जागीरों को ज़ब्त कर ले और कर देने वाले राजाओं और नवाबों से कर मांगे। परंतु इस नीति के व्यवहार में लाते ही राजपूतों ने विद्रोह कर दिया। सन् १७८७ में अधिकांश राजपूत राजाओं ने मिल कर माधवराव सिंधिया को हरा दिया और उसे ग्वालियर में आश्रय लेना पड़ा। परंतु दकन से सहायता पाकर वह फिर दिल्ली की ओर बढ़ा और रुहेलों की जागीर ज़ब्त कर लीं। इस प्रकार रुहेलों से निपट कर उसने राजपूतों की ओर मुँह किया। उसने अपनी सेना को शिक्षा देने के लिए डी बोइन (De Boine) नामक एक फ्रांसीसी को नौकर रखा। इस प्रकार सेना को शिक्षित बनाकर उसने राजपूतों पर चढ़ाई की। पाटन के युद्ध में राजपूतों की हार हुई। सन् १७९० में डी बोइन ने अजमेर पर अधिकार कर लिया। अगले १२ वर्षों तक माधवराव सिंधिया उत्तर-भारत पर शासन करता रहा और शाहआलम की स्थिति एक पेंशन-भोगी से अधिक न थी। शाहआलम ने फिर पेशवा को अपना वकील-ए-मुतलिक बना लिया। सन् १७९२ में वकील-ए-मुतलिक की नियुक्ति का शाही फ़र्मान पूना के एक विशेष दरबार में, जो इसीलिए

किया गया था, बादशाह की ओर से पेशवा को पेश किया गया। दूसरे दिन एक और दरबार किया गया जिसमें पेशवा नारायण ने सिंधिया को अपना डिप्टी या लफटेंट नियुक्त किया। परन्तु इसके शीघ्र ही बाद सन् १७६४ में माधवराव बुख़ार के कारण मर गया। भारतवर्ष के इतिहास में उसका व्यक्तित्व बहुत बड़ा था। उसके मरने पर उसका पुत्र दौलतराव उसके पद पर बैठा। परंतु उसमें उत्तर-भारत में मराठा-शासन को स्थित रखने की योग्यता न थी। माधवराव सिंधिया के मरने पर १० वर्ष के भीतर उत्तर-भारत से मराठों का राज्य जाता रहा और दूसरे मराठा-राज्यों की स्वतंत्रता भी नष्ट हो गई।

मराठों की हैदराबाद से लड़ाई

मराठों और टीपू सुलतान में लड़ाई हो ही रही थी कि मराठों और निज़ामअली में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। कुछ वर्षों से मराठों को हैदराबाद से चौथ और सर्देशमुखी कर नहीं मिले थे। इन करों की रक़म इकट्ठी हो चुकी थी, इसलिए पूना दरबार के प्रधान-मंत्री नाना फड़नवीस ने इसके चुका देने पर ज़ोर दिया। निज़ामअली समय पाने के विचार से इसे टालता रहा और इधर अपनी सेना को शिक्षा देने के लिए उसने रेमंड (Raymond) नामक एक फ्रांसीसी को नौकर रख लिया। जब उसे निश्चय हो गया कि मेरी सेना काफ़ी सुशिक्षित होगई है, तब निज़ामअली ने पूना दरबार को लिख भेजा कि हमारे हिसाब से तो मराठों की पाई पाई चुका दी गई है। यही नहीं, बल्कि कुछ रुपया अधिक पहुँच चुका है, जिसे मराठों को वापस देना चाहिए। नाना फड़नवीस ने उत्तर दिया कि तुम्हारा हिसाब ग़लत है। अंत में सन् १७६४ में निज़ामअली ने मराठों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। रेमंड द्वारा शिक्षा पाई हुई सेना पर उसका पूरा भरोसा था और उसे आशा थी कि यदि मराठे एक बार हार गए तो सदा के लिए इनसे छुटकारा मिल जायगा। परंतु नाना फड़नवीस भी ऐसा वैसा न

था। वह शक्तिशाली होने के साथ-साथ मराठा-शक्तियों में एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ माना जाता था। बड़ौदा का गोविंदराव गायकवाड़, नागपुर का राघोजी सिंधिया, ग्वालियर का दौलतराव सिंधिया, इंदौर का तुकाजी होलकर तथा दूसरे मराठा सरदार सब के सब मराठा-राज्य-संघ की सहायता करने को पहुँचे। सन् १७६५ में खुरदा नामक स्थान पर घमसान युद्ध हुआ और निज़ामअली की हार हुई। पेशवा को चौथ और सरदेशमुखी के पिछले शेष के हिसाब में ३ करोड़ २६ लाख रुपए दिए गए और ३ लाख वार्षिक आमदनी का प्रदेश राघोजी भोंसला को मिला। इस युद्ध के बाद निज़ाम राज्य इतना कमज़ोर हो गया कि उसे फिर कभी किसी अन्य राजा से युद्ध छेड़ने का उत्साह नहीं हुआ। खुरदा की लड़ाई के कुछ ही दिन बाद माधवराव नारायण पेशवा, बीमारी की दशा में, छत्त पर से गिर पड़ा और मर गया। उसके बाद रघुनाथराव का लड़का बाजीराव की गद्दी पर बैठा।

माधवराव नारायण ने अपनी मृत्यु-शय्या पर बाजीराव को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था।

पेशवा बाजीराव दूसरा
१७६५—१८१८

बाजीराव का पिता रघुनाथराव और नाना फड़नवीस एक दूसरे के पुराने शत्रु थे। इसलिए चाहे फड़नवीस बाजीराव पर विश्वास नहीं कर सकता था, तब भी उसने उसे पेशवा मान लिया। पेशवा बनते ही बाजीराव दूसरे को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इंदौर का शासक तुकाजी होलकर की सन् १७६६ में मृत्यु हो गई थी और उसके चार पुत्रों में इंदौर की गद्दी के लिए झगड़ा हो गया। दौलतराव सिंधिया ने इस लड़ाई में हस्तक्षेप किया। वह एक का पक्ष लेकर इंदौर का वास्तव में स्वामी ही बन बैठा। सिंधिया की शक्ति मराठों में ज़ोर पकड़ गई। बाजीराव दूसरे ने सोचा कि नाना फड़नवीस के पंजे से छुटकारा पाने के लिए यह अच्छा अवसर है, क्योंकि वह उसके पिता

का जन्म-काल से शत्रु था। उसने सिंधिया को वचन दिया कि यदि तुम मुझे नाना फड़नवीस से छुटकारा दिला दोगे तो मैं २ करोड़ रुपया दूँगा। काम भी सुगमता से निपटा लिया गया। दौलतराव सिंधिया ने किसी बहाने से नाना फड़नवीस को अपने यहां बुला लिया और वहां उसे क़ैद कर बंदी के रूप में अहमदनगर के क़िले में भेज दिया। अब उसने बाजीराव दूसरे से २ करोड़ रुपये मांगे जिसका बाजीराव की ओर से साफ़ जवाब दे दिया गया। इस पर दौलतराव सिंधिया ने पूना नगर पर आक्रमण कर दिया और दिल भर कर उसे लूटा। बाजीराव दूसरे ने निज़ामअली से सहायता मांगी और दौलतराव सिंधिया से युद्ध शुरू कर दिया। इस समय तक सिंधिया ने नाना फड़नवीस को भी स्वतंत्र कर दिया था और सन् १७९८ में वह फिर पेशवा का प्रधान-मंत्री बन गया। परंतु नाना फड़नवीस का स्वास्थ्य अब जवाब दे चुका था। सन् १८०० के प्रारंभ में उसकी मृत्यु हो गई और तभी पूना के मराठा-दरबार की राजनीतिज्ञता और बुद्धिमत्ता का लोप होगया। शीघ्र ही मराठा-शक्ति का सारा ढांचा टुकड़े-टुकड़े हो गया। ग्वालियर में गृह-युद्ध उठ खड़ा हुआ। इंदौर भी सिंधिया के हाथ से जाता रहा। दौलतराव सिंधिया को पूना छोड़ कर उत्तर की ओर भागना पड़ा। सन् १८०२ में सिंधिया के पूना से जाने के बाद बाजीराव दूसरा लोगों पर मनमाना अत्याचार करने लगा। उसने प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से बदला लेना शुरू कर दिया जिसने कि उसके पिता का विरोध किया था। उसने जसवंतराव होलकर के एक भाई को हाथी के पैर से बंधवा कर पूना की गलियों में घसिटवा कर मरवा डाला। जब जसवंतराव को इस बात की सूचना मिली तब उसने सिंधिया के साथ युद्ध छोड़ कर बाजीराव पर चढ़ाई कर दी। पूना के बाहर घमसान लड़ाई। बाजीराव हारा, परंतु भाग निकला और बसीन जाकर अंग्रेज़ अधिकारियों का आश्रय लिया।

अंग्रेज़ अधिकारियों ने इस शर्त पर पेशवा की सहायता करना

अंग्रेज़ और मराठों की दूसरी लड़ाई के कारण

माना कि वे उन्हें कर दें। ३१ दिसंबर सन् १८०२ में वसीन में एक संधि की गई जिससे पेशवा भारत की अंग्रेज़ी सरकार का सहायक-मित्र हो गया। संधि के अनुसार ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने सब शत्रुओं से पेशवा की रक्षा करना मान लिया। पेशवा ने अंग्रेज़ सरकार को पूना में ६००० सेना रखने की स्वीकृति दी ताकि समय पर उसके काम आए और इस सेना का खर्च चलाने के लिए उसने अंग्रेज़ अधिकारियों को २६ लाख रुपया वार्षिक आमदन की जायदाद सौंप दी। उसने यह बात मान ली कि बिना अंग्रेज़ अधिकारियों की अनुमति के वह किसी को भी अपनी नौकरी में नहीं रखेगा और दूसरी शक्तियों के साथ झगड़ा पैदा होने पर वह अंग्रेज़ सरकार को पंच मानेगा। उसने भविष्य में हैदराबाद से चौथ और सर्देशमुखी लेने का अधिकार छोड़ दिया। पेशवा ने यह भी मान लिया कि भविष्य में वह भारत की किसी भी दूसरी शक्ति से सीधा संबंध स्थापित नहीं करेगा बल्कि उसकी वैदेशिक नीति पर भारत की अंग्रेज़-सरकार का नियंत्रण रहेगा। यह स्पष्ट है कि इस संधि से मराठा-राज्य-संघ भंग हो गया। इसलिए संघ के अन्य सदस्यों ने संधि को नहीं माना। जब सिंधिया ने सुना कि पेशवा ने अंग्रेज़ों के साथ सहायक-संधि कर ली है और अंग्रेज़ी सेनाओं ने पूना पर अधिकार कर लिया है, तब उसे इस सूचना पर बड़ा आश्चर्य हुआ। पेशवा को वह मराठा-राज्य-संघ का प्रधान मानता था और उसका विश्वास था कि प्रधान को यह कोई अधिकार नहीं है कि वह संघ के दूसरे प्रमुख नेताओं की स्वीकृति बिना किसी अन्य शक्ति का आश्रय ले ले। दौलतराव सिंधिया और राघोजी भोंसला दोनों बाजीराव के विरुद्ध हो गए और उन्होंने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जसवंतराव होलकर पेशवा और सिंधिया दोनों के विरुद्ध था। इसलिए वह किसी

और भी नहीं मिला। गायकवाड़ को पहले ही सन् १८०२ में अंग्रेज़ों ने मिला लिया था। अतः पेशवा के विरुद्ध युद्ध-घोषणा का परिणाम यह हुआ कि सन् १८०३ में मराठों और अंग्रेज़ों में युद्ध ठन गया।

अंग्रेज़ और मराठों की दूसरी लड़ाई १८०३

जब अंग्रेज़ और मराठों की दूसरी लड़ाई शुरू हुई तब दक्षिण से भारत के दो प्रमुख राज्य मैसूर और हैदराबाद अंग्रेज़ सहायक-संधि में संमिलित हो गए थे। अंग्रेज़ सेनापति वेलेज़ली ने दक्षिण-भारत में एक शक्तिशाली सेना इकट्ठी की और मराठा-प्रदेश की ओर कूच कर दिया। शीघ्र ही उसने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया और असाई की लड़ाई में भोंसला और सिंधिया की सेनाओं को हरा कर बुरहानपुर और असीरगढ़ के क़िलों पर अधिकार कर लिया। भोंसला ने नई सेना इकट्ठी कर वेलेज़ली का फिर सामना किया परंतु अरगांव की लड़ाई में उसकी फिर हार हुई। वेलेज़ली ने बरार में गाविलगढ़ के क़िले पर अधिकार कर लिया और इसी बीच एक और अंग्रेज़ी सेना ने बंगाल से आकर उड़ीसा पर क़ब्ज़ा कर लिया। सन् १८०३ में विवश राघोजी भोंसला को संधि करनी पड़ी। उसने उड़ीसा और बरार अंग्रेज़ों को सौंप दिए और नागपुर को अंग्रेज़-संरक्षित राज्य मान लिया। उत्तर में एक और अंग्रेज़ सेनापति लार्ड लेक सिंधिया के देश पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। सन् १८०३ में उसने अलीगढ़ पर अधिकार कर लिया और तब दिल्ली की ओर बढ़ कर उसने नवंबर १८०३ में लासवारी की लड़ाई में सिंधिया की सेनाओं को हराया। दिल्ली और आगरा पर भी अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। दिसंबर सन् १८०३ में दौलतराव सिंधिया को भी संधि करनी पड़ी। सूरजी अरजनगांव में संधि पर हस्ताक्षर हुए, जिसके अनुसार उसने चंबल नदी के उत्तर का अपना सारा प्रदेश अंग्रेज़ों को सौंप दिया और राजपूताना के मामलों में हस्तक्षेप करना बंद कर दिया। दिल्ली के बादशाह के दरबार में उसने

वकील-ए-मुतलिक का पद छोड़ दिया और अपने शेष प्रदेश के संबंध में उसने अंग्रेज़ सरकार की सहायक संधि को स्वीकार किया। इस प्रकार सन् १८०३ में मराठा-राज्य-संघ के चार बड़े-बड़े राज्य—गायकवाड़, पेशवा, भोंसला और सिंधिया-अंग्रेज़ी-सरकार के जागीरदार बन गए।

अंग्रेज़ और मराठों की तीसरी लड़ाई १८०४-५

जिस समय भोंसला और सिंधिया के साथ ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की दूसरी लड़ाई हो रही थी उस समय जसवंतराव होलकर तटस्थ बना रहा। परंतु जब उसने देखा कि शेष मराठा-राज्य अंग्रेज़ी सरकार के जागीरदार बन गए हैं, तब वह अपने को रोक न सका। इंदौर में कुछ अंग्रेज़ों को उसने मरवा डाला और इस प्रकार तीसरी मराठा लड़ाई शुरू हुई। जसवंतराव ने आगरा पर आक्रमण किया परंतु वह उसे ले न सका। तब उसने भरतपुर के राजा की सहायता से दिल्ली जाकर बादशाह शाहआलम को अपने अधिकार में करना चाहा, परंतु यहां भी उसे सफलता न मिली। १२ नवंबर सन् १८०४ में डीग की लड़ाई में लार्ड लेक ने उसे हरा दिया। हार कर वह पंजाब की ओर भागा और महाराजा रणजीतसिंह से सहायता मांगी, परंतु वहां भी वह फ़िर असफल रहा। सन् १८०५ में उसने भी संधि कर ली। भरतपुर के राजा ने होलकर की सहायता की थी, इसलिए लार्ड लेक ने सन १८०५ में भरतपुर के क़िले पर चढ़ाई की। चार दफ़ा चढ़ाई की गई, परंतु सफलता न मिली। अंत में राजा ने लड़ाई से दुःखी होकर अंग्रेज़ों का आधिपत्य मान लिया और २० लाख रुपया हरजाने में दिया। इस प्रकार भारत में मराठा-शासन की समाप्ति हो गई।

मराठा साम्राज्य के

अब हम मराठा-साम्राज्य के पतन के कारणों का अनुमान लगा सकते हैं। भारत के इतिहास में मराठा-काल को तीन भागों में बांटा जा सकता है:—(१) सन

पतन के कारण

१६७४ से १७१३ तक अर्थात् शिवाजी के राज्य-पद पाने के समय से लेकर बालाजी विश्वनाथ के पेशवा बनने तक। इस युग में मराठा-राजा स्वच्छंद शासक था। राज्य के सब नौकरों को नक़द वेतन मिलता था। (२) सन् १७१३ से १७६१ तक अर्थात् पानीपत की लड़ाई तक। इस काल में मराठा-नरेश के अधिकार कम हो गए और शासन-सूत्र पूर्ण रूप से पेशवा के अधिकार में चला गया। इस युग में शासन-संबंधी दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि अफ़सरों को मुफ्त जागीर देने की प्रणाली आरंभ हुई। अब राज्य के नौकरों को जागीरदार बना दिया गया। (३) सन् १७६१ से १८०५ तक। इस काल में पेशवा की ताकत भी कमज़ोर हो गई और राज्य का सारा काम प्रधान अमात्य (Chief Secretary) के सिर आ पड़ा। जो मराठा सरदार और जागीरदार पेशवा की आज्ञा मानने को तैयार थे, उन्होंने भी प्रधान अमात्य की आज्ञाएँ मानने से इनकार कर दिया। अब विभिन्न जागीरदारों ने स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली और मराठा-साम्राज्य मराठा-राज्य-संघ में बदल गया। इससे केंद्रीय शक्ति कमज़ोर हो गई और विभिन्न सरदारों में पारस्परिक शत्रुता का जन्म हुआ। यही नहीं, बल्कि सन् १७४९ में एक बड़ी भूल और हुई जब कि राजा साहू ने अपनी मृत्यु-शय्या पर पेशवा का पद बाजीराव के परिवार को वंश-परंपरा-गत रूप से सौंप दिया। इस प्रणाली के अधीन सरदारों को वश में रखना असंभव था। मराठा-साम्राज्य के पतन का दूसरा बड़ा कारण यह था कि सन् १७६१ के बाद केंद्रीय शक्ति इतनी कमज़ोर हो गई कि वह विभिन्न सरदारों को आपस के झगड़ों से रोक नहीं सकती थी। पतन का तीसरा बड़ा कारण यह भी था कि सरकार अब व्यक्तिगत हो गई थी और उसे एक ऐसी शक्ति का सामना करना पड़ा जो भारत में बिलकुल नई स्थापित हुई थी। अंग्रेज़ी शासन-प्रणाली का आधार शासक की अपनी मनमानी न थी, बल्कि ऐसे सिद्धांतों पर

आश्रित थी जिन्हें बड़े सोच-विचार के बाद निश्चित किया जाता था। इसी लिए कि मराठा-साम्राज्य का, जो भारत में मुग़ल-साम्राज्य का स्थान लेने में सफल हुआ था, शीघ्र ही अंत हो गया।

प्रश्न

१. नाना फड़नवीस पर संक्षिप्त नोट लिखो।

(मैट्रिक १९३७, १९४०)

२. संक्षेप से मराठों की दूसरी लड़ाई के कारण, मुख्य घटनायें तथा परिणाम लिखो। (मैट्रिक १९३८)

३. मराठा साम्राज्य के पतन के कारण लिखो।

(भूषण १९३८, १९४१)

४. लासवारी की लड़ाई के साथ कौन-सी ऐतिहासिक घटना का संबंध है?

५. असाई की लड़ाई का भारत के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा?

६. मराठा-राज्य-संघ से तुम क्या समझते हो? दूसरी मराठा लड़ाई के कारण और परिणाम लिखो।

७. भारत के इतिहास में बाजीराव दूसरे ने कौन-सा भाग लिया?

८. बाद्गांव की संधि पर संक्षिप्त नोट लिखो।

चौथा अध्याय

दक्षिण-भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का उदय

१७१९-१८०५

पहले भाग के १७वें अध्याय में हम बता चुके हैं कि सन १५६५ में दक्षिण के मुसलमानी राज्यों ने मिलकर विजय-

मैसूर-राज्य की

नगर के हिंदू-साम्राज्य को नष्ट कर डाला।

उत्पत्ति और वृद्धि

इसके बाद यह राज्य बहुत से भागों में बंट गया। इसके पतन पर दक्षिण के प्रांत अपने अपने सूबेदारों के अधीन स्वतंत्र हो गए। इन्हीं स्वतंत्र राज्यों में से एक श्रीरंगापटम् भी था। इस नगर के पास ही मैसूर की एक छोटी-सी ज़मींदारी में दो यादव भाई रहते थे। जब सन् १६०६ में श्रीरंगापटम् का सूबेदार मरा तब राजा वादियर मैसूर का ज़मींदार था। उसने श्रीरंगापटम् के नगर पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार छोटे-से नए राज्य की नींव डाली। यही छोटा-सा राज्य राजा देवराज के समय फैलने लगा। मैसूर के इस हिंदू-राज्य के उत्थान से औरंगज़ेब प्रसन्न था। उसे आशा थी कि निकट भविष्य में यह राज्य मराठों के विरुद्ध खड़ा किया जा सकेगा। औरंगज़ेब ने देवराज को मैसूर का राजा मान लिया और उसे हाथी-दांत का बना सिंहासन भेंट किया, जो विशेषतया उसी के लिए बनवाया गया था। सन् १७०४ में राजा देवराज के मरने पर राज्य कुछ बालक राजाओं के हाथ आया। इसीलिए सारा शासन-प्रबंध मंत्रियों के हाथ चला गया।

हैदरअली का उत्थान

इन बालक राजाओं में से एक का नाम कृष्णराज था। उसने सन् १७३४ से १७६६ तक राज्य किया। सन् १७४९ में हैदरअली मैसूर-राज्य की सेना में एक साधारण सिपाही के रूप में प्रविष्ट हुआ, परंतु शीघ्र ही उसने प्रसिद्धि पा ली। जब सन् १७४९ में दक्षिण-भारत में गद्दी के लिए गृह-युद्ध छिड़ा, तब मैसूर-राज्य ने भी झगड़े में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। सन् १७५५ तक मैसूर की सेनाएँ इसी लड़ाई में उलझी रहीं। इसी समय मैसूर-राज्य पर उत्तर से मराठों और निज़ाम ने आक्रमण किया। हैदरअली ने इनका सामना कर इन्हें भगा दिया और इसी लिए वह प्रसिद्ध हो गया। सन् १७६० में वह


हैदरअली

मैसूर की सेनाओं का मुख्य सेनापति हो गया और सेना के खर्च के लिए राजा कृष्णराज ने उसे राज्य की आमदन का आधा भाग दे दिया। इसके कुछ ही समय बाद सब शासन-प्रबंध हैदरअली के हाथ चला गया और राजा कृष्णराज एक कठपुतली मात्र रह गया। हैदरअली ने सन् १७६१ से लेकर १७८२ तक राज्य किया।

हैदरअली १७६१-१७८२

जब सन १७६१ में पानीपत की लड़ाई में मराठों की हार हुई, तब अवसर पाकर हैदरअली ने उत्तर में अपना राज्य बढ़ा लिया। परंतु, जैसा कि हम बता चुके हैं, हैदरअली ने जो प्रदेश जीते, उन्हें १७६५-१७६६ के बीच मराठों ने फिर वापस ले लिया। इसी समय सन् १७६७-६९ में हैदरअली को मद्रास के अंग्रेज अधिकारियों से लड़ना पड़ा। परंतु इस लड़ाई के कारण उसके प्रदेशों में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। लड़ाई समाप्त होने पर मद्रास के अंग्रेज अधिकारियों और हैदरअली में एक संधि हो गई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि यदि दोनों में से किसी के राज्य पर कोई तीसरा आक्रमण करेगा तो दोनों एक-दूसरे की सहायता करेंगे। परंतु बाद में जब मराठों ने हैदरअली पर आक्रमण किया, तब अंग्रेज़ों ने उसे सहायता देने से इनकार कर दिया। हैदरअली को विवश अपने राज्य का एक काफ़ी हिस्सा मराठों के हाथ सौंपना पड़ा। परंतु जल्दी ही उसने अपनी इस हानि को पूरा कर लिया। जब सन् १७७६ में अंग्रेज़ और मराठों की पहली लड़ाई चल रही थी, तब हैदरअली को इस बात का बहुत अच्छा

वसर मिला कि वह अपने खोए हुए प्रदेश वापस ले ले। नाना फड़न-
ीस ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध उसकी सहायता पाने के उद्देश्य से उसे कृष्णा
दी तक का सारा प्रदेश वापस दे दिया। जब सन् १७८२ में हैदरअली
रा, तब उसके पास मैसूर का वर्तमान राज्य ही न था, बल्कि बीजापुर,
ारवार, बेलगाम, बंबई प्रांत के दक्षिण में उत्तर कनाड़ा, बेलारी, अनंतपुर,
कडापा, सलीम, कोयमबिटोर और नीलगिरी के ज़िले तथा मदरास प्रांत
में मदूरा के प्रदेश का पश्चिमी भाग उसके अधीन था। इसके साथ पश्चिम
में कूर्ग, मलाबार, और दक्षिण कनाड़ा पर भी उसका अधिकार था।

टीपू सुलतान १७८२-१७९९

जब हैदरअली मरा तब वह मराठों का एक सहायक था और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी से लड़ रहा था। सन् १७८२ में अंग्रेज़ और मराठों में संधि हो गई और सन् १७८४ में मैसूर-राज्य और अंग्रेज़ों में भी समझौता हो गया। इस वर्ष की संधि से वे प्रदेश जो एक दूसरे ने जीते थे, एक दूसरे को लौटा दिए। परंतु टीपू सुलतान ऐसा व्यक्ति न था कि जो आराम से बैठ सके। अंग्रेज़ों के साथ युद्ध करने से पीछा छुड़ा कर उसने मराठों को तंग करना शुरू किया। हम यह पहले बता चुके हैं कि इस पर मराठों ने निज़ामअली से मिल कर टीपू सुलतान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अंत में सन् १७८७ में बीजापुर और बेलगाम के ज़िले उसे मराठों को सौंप देने पड़े और बेलारी तथा रायचूर के कुछ भाग निज़ाम को दिए गए।



टीपू सुलतान

बना कर भेज दिया और इधर हैदरकुली खाँ को, जो गुजरात का पहले से शासक था, गुप्त आदेश दे दिया कि उसका विरोध करे। परंतु आसफ़जाह बादशाह के कुचक्र में न फँसा। वह बहुत चतुर था। वह तेज़ी से गुजरात की तरफ़ बढ़ा और इससे पहले कि हैदरकुली खाँ उसका विरोध करने की तैयारियाँ करे, आसफ़जाह ने उसे अकस्मात् जा दबाया। गुजरात आसफ़जाह के हाथ आ गया। अब वह अपना एक प्रतिनिधि प्रांत पर शासन करने के लिए छोड़ कर स्वयं दिल्ली लौट आया। परंतु अब उसे शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि दिल्ली में उसका जीवन सुरक्षित नहीं। इसलिए उसने बादशाह से दक्षिण जाने की स्वीकृति माँगी। उसे तुरंत ही स्वीकृति दे दी गई, परंतु साथ ही मुहम्मदशाह ने फिर औरंगाबाद के सूबेदार को गुप्त आदेश भेजा कि वह सूबेदार आसफ़जाह को आगे बढ़ने न दे। परिणाम यह हुआ कि सन् १७२४ में शक्करखेड़ा में लड़ाई हुई, जिसमें औरंगाबाद का सूबेदार मारा गया और आसफ़जाह विजयी हुआ। इस लड़ाई के बाद आसफ़जाह ने स्वतंत्र सत्ता धारण कर ली। सन् १७२६ में उसने औरंगाबाद से हटाकर हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाया। उसने सन् १७२४ से लेकर १७४८ तक राज्य किया। सन् १७३० में गुजरात और मालवा पर से अपने अधिकार छोड़ दिये और यह प्रांत मराठों के हाथ लगे। जब सन् १७४८ में वह मरा, तब उसके बेटों में गद्दी के लिए आपस में लड़ाई छिड़ गई। आसफ़जाह के कई लड़के थे। सब से बड़ा बेटा ग़ाज़ी-उद्दीन था, जो नादिरशाह के लौटने के बाद सन् १७३६ से ही दिल्ली में मुहम्मदशाह का वज़ीर था। दूसरा बेटा नासिरजंग औरंगाबाद का शासक था। उसके तीन बेटे और भी थे—सलाबत जंग, निज़ामअली और बसालत जंग। बीजापुर का राज्य उसके धेवते मुज़फ़्फ़रजंग के अधिकार में था। नासिरजंग ने औरंगाबाद में ही गद्दी पर अपने अधिकार की घोषणा कर दी और मुज़फ़्फ़रजंग भी अपने नाना के तख़्त की आशा करके आगे बढ़ा।

इधर गाज़ी-उद्दीन भी तख़्त पर अपना अधिकार जमाने के उद्देश से दिल्ली से हैदराबाद की ओर बढ़ा। परंतु वह औरंगाबाद तक ही पहुँचने पाया था कि वहां गृह-षड्यंत्र द्वारा विष खिला देने से उसका अंत हो गया। सन् १७५० में नासिरजंग मारा गया और सन् १७५१ में मुज़फ़्फ़रजंग भी मारा गया। इन सब घटनाओं का परिणाम यह निकला कि सलावतजंग दक्षिण का शासक हो गया। अपने भाई अलनिज़ामी को उसने बरार सौंपा और बज़ालतजंग को पूर्वी समुद्र तट पर गुंतूर ज़िले का अधिकारी बना दिया। आगे चलकर हम बतायेंगे कि सलावतजंग ने दक्षिण का यह शासन विशेषतया फ्रांसीसियों की सहायता द्वारा जीता था। इसीलिए दक्षिण में फ्रांसीसियों का प्रभाव सब से अधिक हो गया। फ्रांसीसी सेनापति बुसी हैदराबाद की सेनाओं का मुख्य सेनापति बन गया। सन् १७५३ में बुसी को उत्तरी सरकार की मालगुज़ारी वसूल करने का अधिकार दिया गया, जिससे वह अपनी सेना का खर्च चला सके। सन् १७५७ में फ्रांसीसियों ने उत्तरी-सरकार में अंग्रेज़ों की बस्ती पर अधिकार कर लिया। इस समय जनरल बुसी बंगाल में फ्रांसीसियों की सहायता को जाने का विचार कर ही रहा था कि भारत के नये फ्रांसीसी गवर्नर कौंट लैली की आज्ञा मिली कि शीघ्र हैदराबाद छोड़कर अर्काट चले आओ। सन् १७५८ में जनरल बुसी ने हैदराबाद छोड़ दिया। उसका पीठ मोड़ना था कि बंगाल से अंग्रेज़ों ने उत्तरी-सरकार पर और पश्चिम से मराठों ने हैदराबाद पर चढ़ाई कर दी। अंग्रेज़ों ने उत्तरी-सरकार पर अधिकार कर लिया। उदगीर की लड़ाई में सन् १७५९ में मराठों ने सलावतजंग को हरा कर नासिक, अहमदनगर और बीजापुर पर अधिकार कर लिया। सन् १७६१ में सलावत जंग के बाद उसका भाई निज़ामअली गद्दी पर बैठा और उसने सन् १८०३ तक राज्य किया। अपने ४२ वर्ष के शासन-काल में वह मराठों अथवा मैसूर इन दोनों से लड़ता रहा। हम पहले बता चुके हैं कि सन् १७६५ में खुरदा

व्यवसाय बंद कर दिये जाएँ। तब अंग्रेज़ों ने समुद्र में फ्रांसीसी जहाज़ों को पकड़ना शुरू कर दिया। अंत में डूप्ले ने विवश होकर फ्रांस की घरू सरकार से अपनी रक्षा के लिए फ्रांसीसी बेड़े के छः जहाज़ माँगे। उस समय हिंद महासागर स्थित मारीशस का द्वीप पूर्व में फ्रांसीसियों की नौ-सेना का केंद्र था। सन् १७४७ में फ्रांसीसी नौ-सेना ने भारतीय समुद्र तट पर उतरी और मदरास के अंग्रेज़ी इलाक़े पर घेरा डाल लिया। जब नवाब अनवरुद्दीन ने इस बात का विरोध किया कि फ्रांसीसियों ने भारत की शांति क्यों भंग की, तब डूप्ले ने तुरंत आश्वासन दिया कि मदरास को जीत कर नवाब के हवाले कर दूँगा। परंतु जब मदरास पर फ्रांसीसियों का वास्तविक अधिकार हो गया, तब डूप्ले ने इसे नवाब को सौंपने से इनकार कर दिया। इस पर नवाब ने फ्रांसीसियों के विरुद्ध एक सेना भेजी, परंतु वह सेना हार गई। आधुनिक काल में यह पहला अवसर था कि यूरोपियनों ने भारतीयों को युद्ध में हराया। नवाब की सेना को हराकर फ्रांसीसियों ने दक्षिण के सब अंग्रेज़ी देशों पर अधिकार कर लिया। अंत में जब सन् १७४८ में दोनों पक्षों में संधि हो गई, तब अंग्रेज़ों के छीने गए सारे प्रदेश उन्हें लौटा दिए गए। परंतु इस युद्ध में अनवरुद्दीन ने कई बार अंग्रेज़ों का पक्ष लिया था, इसलिए डूप्ले उसका शत्रु बन गया।

कर्नाट में उत्तरा-धिकार संबंधी युद्ध

पहले बताया गया है कि सन् १७४१ में चाँदा साहब को बंदी बनाकर सतारा भेज दिया गया। सन् १७४८ में जब बूढ़ा आसफ़जाह निज़ाम-उल-मुल्क मर गया, तब पेशवा बालाजी बाजीराव और चाँदा साहब में, जो स्वतंत्र कर दिया गया था, समझौता हो गया। इसके बाद ही चाँदा साहब बीजापुर के नवाब मुज़फ़्फ़र जंग के पास पहुँचा। मुज़फ़्फ़र जंग को दक्षिण की गद्दी का अधिकार था, इसलिए वह कर्नाट की गद्दी पर चाँदा

साहब को सहायता देने के लिए तैयार हो गया। फ्रांसीसी गवर्नर ने भी, जो नवाब अनवरुद्दीन के विरुद्ध था, चाँदा साहब का साथ देना स्वीकार किया। इस प्रकार सब प्रबंध ठीक कर मुज़फ्फ़र जंग और चाँदा साहब ने अर्काट पर चढ़ाई कर दी। दामलचरी दर्रा के पास लड़ाई हुई। इस लड़ाई में अनवरुद्दीन मारा गया और उसके बेटे मुहम्मदअली ने त्रिचनापल्ली के क़िले में आश्रय लिया।

अर्काट में अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों की दूसरी लड़ाई

जब अर्काट की ऊपर कही घटनाओं का समाचार औरंगाबाद पहुँचा, तब नासिरजंग ने, जो (हैदराबाद) दक्खिन के तख़्त पर अधिकार जमा बैठा था, दक्षिण की ओर कूच कर दिया। उसने दक्षिण के अपने सब सहायकों को सहायता के लिए लिख भेजा। मदरास के अंग्रेज़ों और त्रिचनापली से मुहम्मदअली को भी सहायता के लिए बुला भेजा गया। इधर फ्रांसीसियों ने चुपके से जिंजी के महत्त्वपूर्ण क़िले पर अधिकार कर लिया। जब नासिरजंग जिंजी की ओर बढ़ा, तब उसी के कुछ साथियों ने उसे मार डाला। अब मुज़फ्फ़रजंग दक्खन का सूबेदार बन गया और चाँदा साहब को अर्काट का नवाब मान लिया गया। इससे दक्षिण-भारत में फ्रांसीसियों का प्रभाव बहुत बढ़ गया। उनके ही नियुक्त पुरुष दक्षिण की गद्दी और अर्काट की नवाबी दोनों पर विराजमान थे। बुसी को दक्षिण की सेनाओं का सेनापति बनाया गया। इसके बाद चाँदा साहब और फ्रांसीसियों ने मिलकर त्रिचनापली को घेर लिया जहाँ कि मुहम्मद-अली ने मदरास के अंग्रेज़ों, तंजोर और गूटी के मराठा तथा पुदुकोटा और मैसूर के हिंदू राजाओं से सहायता की प्रार्थना की। मैसूर ने इस शर्त पर सहायता देना माना कि जीत के बाद त्रिचनापली मैसूर-राज्य को सौंप दिया जाय। इधर मेजर लारेंस के अधीन एक अंग्रेज़ी सेना भी सहायता के लिए भेजी गई।

व्यवसाय बंद कर दिये जाएँ। तब अंग्रेज़ों ने स
को पकड़ना शुरू कर दिया। अंत में डूप्ले ने
घरू सरकार से अपनी रक्षा के लिए फ्रांसीसी
उस समय हिंद महासागर स्थित मारीशस का
की नौ-सेना का केंद्र था। सन् १७४७ में फ्रांसीस
समुद्र तट पर उतरी और मदरास के अंग्रे
लिया। जब नवाब अनवरुद्दीन ने इस बात
फ्रांसीसियों ने भारत की शांति को भंग की, तब
दिया कि मदरास को जीत कर नवाब के हवाले
मदरास पर फ्रांसीसियों का वास्तविक अधिकार
इसे नवाब को सौंपने से इनकार कर दिया
फ्रांसीसियों के विरुद्ध एक सेना भेजी, परंतु वह
काल में यह पहला अवसर था कि यूरोपियनों
से हराया। नवाब की सेना को हराकर फ्रांसी
अंग्रेज़ों देशों पर अधिकार कर लिया। अंत में ज
पक्षों में संधि हो गई, तब अंग्रेज़ों के छीने गए म
दिए गए। परंतु इस युद्ध में अनवरुद्दीन ने कई
लिया था, इसलिए डूप्ले उसका शत्रु बन गया।

कर्नाटक में उत्तराधिकार संबंधी युद्ध

पहले बताया गया है कि सन् १७४१ में चां
बनाकर सतारा भेज दिया।
जब बूढ़ा आसफ़जाह नि
गया, तब पेशवा बाला
[illegible] में, जो स्वतंत्र
[illegible] हो गया। इसके द
[illegible]पुर के नवाब मुज़फ़्फ़रजंग के पास पहुँचा। मु
को गद्दी का अधिकार था, इसलिए वह कर्नाट

चाहे इस समय चांदा साहब मर चुका था, फिर भी लड़ाई होती रही। फ्रांसीसी और मैसूर का राजा एक ओर और मुहम्मदअली तथा अंग्रेज़ दूसरी तरफ़ थे। इस लड़ाई से फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों दोनों के व्यापार को काफ़ी हानि पहुंच रही थी। अंत में दोनों कंपनियों के डायरेक्टर लोग युद्ध से तंग आगए। उन्होंने मिल कर एक सभा की और सन् १७५५ में पारस्परिक शत्रुता छोड़ देने का निश्चय कर लिया। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों ने फ्रांमीसी गवर्नर जनरल डूप्ले को घापस बुला लिया। मुहम्मदअली को दोनों ने अर्काट का शासक मान लिया और आगे को यह निश्चय किया गया कि भविष्य में दोनों किसी भी देशी लड़ाई में हस्तक्षेप न करेंगे। अभी दोनों दल इस संधि पर हस्ताक्षर भी न कर पाये थे कि यूरोप में सप्त-वर्षीय युद्ध आरंभ हो गया। इस बार भी अंग्रेज़ और फ्रांसीसी एक दूसरे के विपक्ष में रहे।

अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों की अर्काट की तीसरी लड़ाई

ज्योंही यूरोप में सप्त-वर्षीय युद्ध का आरम्भ हुआ, त्योंही फ्रांसीसी सरकार ने कौंट लैली को भारतवर्ष भेज दिया ताकि वह अंग्रेज़ों को यहां से निकाल दे। उन दिनों यूरोप से भारत तक का जल-मार्ग बहुत लंबा था और कौंट लैली १७५८ से पहले यहां न पहुँच सका। उसके आने से पहले ही अंग्रेज़ों का बंगाल पर पूरा अधिकार हो चुका था और वे उस समृद्ध देश के साधनों का फ्रांसीसियों के विरुद्ध प्रयोग कर सकते थे। कौंट लैली ने पांडिचरी पहुँचने पर तत्काल अंग्रेज़ी बस्ती सेंट डेविड पर अधिकार कर लिया और मद्रास की ओर बढ़ा। उसने साथ ही हैदराबाद से जनरल बुसी को आज्ञा दी कि वह दक्षिण वापस आवे और अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ाई करे। हैदराबाद से बुसी को वापस बुलाकर लैली ने बहुत भारी ग़लती की। ज्योंही उसने हैदराबाद छोड़ा त्योंही दक्षिण में फ्रांसीसियों का सब प्रभाव जाता

क्लाइव की प्रसिद्धि

इस समय मद्रास में एक अंग्रेज युवक राबर्ट क्लाइव कंपनी में क्लर्की का काम करता था। उसे सैनिक विषयों में बड़ी रुचि थी। उसने सोचा कि चाँदा साहब की सारी सेना तो त्रिचनापली के घेरे में लगी हुई है, इसलिए उसकी अपनी राजधानी अर्काट अवश्य अरक्षित अवस्था में होगी। अतएव उसने प्रस्ताव रखा कि अर्काट पर चढ़ाई करने के लिए एक छोटी-सी सेना भेजी जानी चाहिए। इस पर चाँदा साहब अपनी कुछ न कुछ सेना त्रिचनापली से अर्काट ज़रूर भेजेगा। क्लाइव की इस चाल को बहुत पसंद किया गया और स्वयं उसी के अधीन एक छोटी सी सेना अर्काट भेजी गई। अर्काट पर आसानी से अधिकार कर लिया गया। जब यह समाचार चांदा साहब के पास पहुँचा, तब वह बहुत बिगड़ा। उसने १० हज़ार सेना त्रिचनापली से अर्काट भेज दी। क्लाइव और उसकी सेना अर्काट में घिर गई। दो महीने तक ये लोग अर्काट में घिरे पड़े रहे। उसी समय गूटी का मराठा सरदार, जो मुहम्मदअली की सहायता को जा रहा था, अर्काट के पास से गुज़रा। उसने चांदा साहब की सेना पर आक्रमण किया और इस प्रकार क्लाइव को सहायता पहुँचाई। चांदा साहब की सेना को अर्काट से वापस लौटना पड़ा।

चाहे इस समय चांदा साहब मर चुका था, फिर भी लड़ाई होती रही। फ्रांसीसी और मैसूर का राजा एक ओर और मुहम्मदअली तथा अंग्रेज़ दूसरी तरफ़ थे। इस लड़ाई से फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों दोनों के व्यापार को काफ़ी हानि पहुंच रही थी। अंत में दोनों कंपनियों के डायरेक्टर लोग युद्ध से तंग आगए। उन्होंने मिल कर एक सभा की और सन् १७५५ में पारस्परिक शत्रुता छोड़ देने का निश्चय कर लिया। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों ने फ्रांसीसी गवर्नर जनरल डूप्ले को वापस बुला लिया। मुहम्मदअली को दोनों ने अर्काट का शासक मान लिया और आगे को यह निश्चय किया गया कि भविष्य में दोनों किसी भी देशी लड़ाई में हस्तक्षेप न करेंगे। अभी दोनों दल इस संधि पर हस्ताक्षर भी न कर पाये थे कि यूरोप में सप्त-वर्षीय युद्ध आरंभ हो गया। इस बार भी अंग्रेज़ और फ्रांसीसी एक दूसरे के विपक्ष में रहे।

अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों की अर्काट की तीसरी लड़ाई

ज्योंही यूरोप में सप्त-वर्षीय युद्ध का आरंभ हुआ, त्योंही फ्रांसीसी सरकार ने कौंट लैली को भारतवर्ष भेज दिया ताकि वह अंग्रेज़ों को यहां से निकाल दे। उन दिनों यूरोप से भारत तक का जल-मार्ग बहुत लंबा था और कौंट लैली १७५८ से पहले यहां न पहुंच सका। उसके आने से पहले ही अंग्रेज़ों का बंगाल पर पूरा अधिकार हो चुका था और वे इस समृद्ध देश के साधनों का फ्रांसीसियों के विरुद्ध प्रयोग कर सकते थे। कौंट लैली ने पांडिचरी पहुंचने पर तत्काल अंग्रेज़ी बस्ती सेंट डेविड पर अधिकार कर लिया और मद्रास की ओर बढ़ा। उसने साथ ही हैदराबाद में जनरल बुसी को आज्ञा दी कि वह दक्षिण वापस आये और अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ाई करे। हैदराबाद से बुसी को वापस बुलाकर लैली ने बहुत भारी ग़लती की। ज्योंही उसने हैदराबाद छोड़ा त्योंही दक्षिण में फ्रांसीसियों का सब प्रभाव जाता

रहा। अब फ्रांसीसी हैदराबाद के साधनों का उस प्रकार प्रयोग नहीं कर सकते थे जिस प्रकार कि अंग्रेज़ बंगाल के साधनों का। अर्काट में बुसी के पहुँचने से फ्रांसीसियों को कोई लाभ न था। चाहे मदरास को घेर लिया गया था, तब भी लड़ाई जारी रखने के लिए रुपये की ज़रूरत थी। काउंट लैली पांडिचरी से कुछ भी रुपया न ले सकता था। इसलिए रुपया पाने के उद्देश से उसने तंजौर पर आक्रमण कर दिया और वहाँ के राज्य को विवश किया कि वह रुपया दे। परंतु इन चालों से फ्रांसीसी देश में अप्रिय बन गए। इन बातों ने कई देशी शक्तियों को फ्रांसीसियों का शत्रु बना दिया। दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ मदरास में जमे बैठे रहे। अंग्रेज़ी जंगी जहाज़ों का एक बेड़ा भारतीय सागर में आ पहुँचा और विवश फ्रांसीसियों को मदरास का घेरा उठा लेना पड़ा। क्लाइव ने भी, जो इस समय बंगाल में था, वहां से अर्काट को नई सहायता भेजी। सर आयर कूट इस नई सेना का सेनापति था। उसने सन् १७६० में वांडिवाश के स्थान में फ्रांसीसियों को बुरी तरह हरा दिया। इस लड़ाई के बाद फ्रांसीसियों की सब बस्तियों पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। पांडिचरी नगर भी घेर लिया गया और सन् १७६१ के प्रारंभ में उसे भी अंग्रेज़ों ने ले लिया। सन् १७६३ में सप्त-वर्षीय युद्ध समाप्त हुआ और पेरिस में एक संधि हुई, जिसके अनुसार पांडिचरी फ्रांसीसियों को वापस लौटा दिया गया। इस युद्ध के बाद दक्षिण में फ्रांसीसियों का प्रभाव जाता रहा और देश के इस भाग में अंग्रेज़ों का राजनीतिक प्रभाव जम गया। अब अर्काट का नवाब मुहम्मदअली मदरास के अंग्रेज़ अधिकारियों के हाथ की कठपुतली बन गया। जब वह सन् १८०१ में मरा, तब उसके प्रदेशों को अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया।

अंग्रेज़ी की विजय के कारण

दिनों तक युद्ध का खर्च उठा सकती थी। दूसरी तरफ़ फ्राँसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के पास रुपया न था और वह लंबे युद्ध का खर्च उठाने में असमर्थ थी। (२) इंगलैंड की ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के स्वार्थों में कोई टक्कर न थी। इसलिए ब्रिटिश सरकार ईस्ट इंडिया कंपनी को सहायता देती रही। दूसरी तरफ़ फ्राँसीसी सरकार फ्रैंच ईस्ट इंडिया कंपनी को कोई कार्य-स्वतंत्रता देना नहीं चाहती थी, और न ही फ्राँसीसी सरकार के अधिकारी फ्रैंच कंपनी के अधिकारियों के साथ सहयोग कर सकते थे। (३) अंग्रेज़ी जहाज़ी बेड़े का सागरों पर सर्वोच्च अधिकार था। ब्रिटिश कंपनी को सहायता को वह हर कहीं पहुँच सकता था। फ्राँसीसी बेड़ा ऐसा करने में असमर्थ था। (४) फ्राँस महाद्वीप संबंधी प्रदेश है और इसलिए यूरोप की महाद्वीप संबंधी लड़ाइयों में उसे सदा फँसे रहना पड़ता है। इंगलैंड की स्थिति ऐसी नहीं। इसलिए वह सरलता से अपना ध्यान समुद्र पार के देशों के मामलों पर खींच सकता है। इन्हीं कारणों से फ्राँसीसी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में असमर्थ रहे और अंग्रेज़ों को इसमें सफलता मिली।

प्रश्न

१. डूपले और क्लाइव पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १६३७)

२. हैदरअली पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १६४०)

३. टीपू सुलतान पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १६४३)

४. डूपले की जीवनी पर एक नोट लिखो। यह बताओ कि साम्राज्य स्थापित करने में उसे सफलता क्यों नहीं प्राप्त हुई?

(भूषण १६३६)

५. मैसूर की तीसरी लड़ाई के कारण और परिणाम लिखो।

(भूषण १६४१)

१७५६—५७ विषयों में उसे ज़रा भी अनुभव न था। उसने आरंभ से ही अपनी प्रजा को तंग करना शुरू किया। इसी लिए राज्य में गड़बड़ पैदा हो गई। दरबारी उससे नाराज़ थे और प्रजा भी उससे खुश न थी। अलीवर्दी खाँ का बहनोई, मीर जाफ़र अली, उसकी सेनाओं का सेनापति था। वह भी नवाब से असंतुष्ट था। ऐसी ही परिस्थितियों में सिराज-उद्दौला ने कलकत्ता के अंग्रेज़ अधिकारियों से बिगड़ कर आत्म-घातक नीति को अपनाया। जिस समय सन् १७५६ में अलीवर्दी खाँ मरा, तभी से कलकत्ता के अंग्रेज़ अधिकारियों को फ्रांसीसियों से लड़ाई छिड़ने का हर समय डर लगा रहता था। इसी कारण अपने को तैयार करने के लिए उन्होंने फोर्ट

सवार हो हुगली नदी के मुहाने की तरफ भाग गया और फुलटा द्वीप में जाकर आश्रय लिया। फोर्ट विलियम में कलकत्ता का कलक्टर हॉलवेल तथा कुछ अंग्रेज़ स्त्री-पुरुष रह गये। नवाब ने तुरंत फोर्ट विलियम के क़िले पर अधिकार कर लिया और उन सब को क़ैद कर लिया। कहा जाता है कि इस समय १४६ स्त्री-पुरुष क़ैद किये गये थे। जून की गर्मी पड़ रही थी और ऐसी ही गर्मी में, कहा जाता है कि, इन बंदियों को एक ऐसी छोटी-सी कोठरी में बंद कर दिया गया जो क़िले में क़ैदखाने का काम देती थी। दूसरे दिन जब दरवाज़ा खोला गया, तब कहते हैं कि केवल २३ व्यक्ति जीते बाहर निकले, जिनमें से एक हॉलवेल साहब था। उसने ही इस घटना का वर्णन किया है।

क्लाइव द्वारा कलकत्ता का उद्धार

जब इन भयानक घटनाओं का समाचार मद्रास पहुँचा, तब राबर्ट क्लाइव और एडमिरल वाटसन छुट्टियां मनाकर इँगलैंड से वापस लौटे ही थे। मद्रास के अधिकारियों ने शीघ्र ही २५०० सैनिक क्लाइव की अध्यक्षता में सौंप उसे तथा मि० वाटसन को बंगाल की ओर भेजा। सन् १७५६ के अंत में ये हुगली नदी के मुहाने पर पहुँचे और ड्रेक तथा साथियों को साथ लेकर कलकत्ता की ओर चल पड़े। वर्तमान बजबज के पास नवाब की सेनाओं से उनकी मुठभेड़ हुई। नवाब की सेनाओं को हराकर उन्होंने कलकत्ता पर फिर से अधिकार कर लिया। इसके बाद दमदम के पास नवाब की सेनाओं की फिर हार हुई। वास्तव



राबर्ट क्लाइव

मीरजाफ़र और अन्य सरदार तटस्थ रहे और युद्ध का सब भार नवाब के फ्रांसीसी सैनिकों पर पड़ा। अंत में सिराज-उद्दौला मैदान से भाग निकला। उसका पीछा किया गया और मीरजाफ़र के बेटे ने उसे मार दिया। अंग्रेज़ों की जीत हुई।

मीरजाफ़र
१७५७--१७६१

प्लासी की लड़ाई के बाद मीरजाफ़र को बंगाल और बिहार का नवाब स्वीकार किया गया। मीरजाफ़र ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को कलकत्ता के आसपास के २४ परगनों की ज़मींदारी का अधिकार दिया और यह वचन दिया कि फ्रांसीसियों को नई बस्ती स्थापित करने की अनुमति नहीं दी जायगी। उसने यह बात मान ली कि हुगली नगर के दक्षिण हुगली नदी पर कोई क़िला नहीं बनाया जायगा, अंग्रेज़ों के शत्रुओं को अपना शत्रु समझेगा और उनके मित्रों को अपना मित्र। सिराज-उद्दौला द्वारा कलकत्ता की लूट की भरपाई करने के लिए उसने कलकत्ता के व्यापारियों और अंग्रेज़ी कंपनी को १७५ लाख रुपया, प्लासी के युद्ध में लड़ने वाले अंग्रेज़ सैनिकों के लिए ६० लाख रुपया और क्लाइव, कलकत्ता के गवर्नर तथा कंपनी के अन्य अधिकारियों को उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप ५४ लाख रुपया देना भी स्वीकार किया। अर्थात् इस युद्ध के कारण मीरजाफ़र ने कुल २८९ लाख रुपया देना माना। अमींचंद को कोरा जवाब दे दिया गया। इस कुल धन को देने के लिए जब मुर्शिदाबाद के खजाने की जांच की गई तब पता लगा कि उसमें केवल १५७ लाख रुपया बाक़ी है। कलकत्ता के अंग्रेज़ व्यापारियों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि उन्हें कुल रुपया दिया जाय। इसलिए सन् १७५८ में मीरज़ाफ़र ने उन्हें तब तक के लिए नदिया और बर्दवान का कर वसूल करने के अधिकार दिया जब तक कि उनका रुपया वसूल न हो जाय।

बंगाल पर मुग़लों का आक्रमण

मीरजाफ़र ने अभी कठिनता से अंग्रेज़ों की मांगों से छुटकारा पाया था कि समाचार मिला कि दिल्ली की गद्दी का अधिकारी शाहज़ादा अलीगौहर ने इलाहाबाद के नवाब की सहायता से बिहार पर चढ़ाई कर दी है। मीरजाफ़र को फिर क्लाइव से सहायता माँगनी पड़ी। क्लाइव और कप्तान फार्स्ट की अध्यक्षता में एक अंग्रेज़ी सेना बिहार को बढ़ी, परंतु इससे पहले ही कि ये सेना वहां तक पहुंचती, इलाहाबाद का नवाब जल्दी वापस लौट गया। उसके अपने इलाक़े पर अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने चढ़ाई कर दी थी। शाहज़ादा अलीगौहर अकेला रह गया और वह भाग कर बनारस के राजा बलवंतसिंह के पास चला गया। क्लाइव को ज़रा भी लड़ना नहीं पड़ा और वह इस प्रसिद्धि के साथ वापस आया कि उसने आक्रमण विफल कर दिया। मीरजाफ़र ने क्लाइव को सैफ़-ए-जंग की पदवी दी और जागीर में २४ परगनों की मालगुज़ारी। इन घटनाओं के बाद अंग्रेज़ लोग बंगाल में बलवान हो गये। सन १७५६ में क्लाइव ने एक सेना कर्नल फ़ोर्ड की अध्यक्षता में उत्तरी-सरकार को जीतने के लिए भेजी और उसे आसानी से सफलता मिल गई। सन १७६० में क्लाइव फिर छुट्टी पर इंगलैंड चला गया, परंतु उसके जाने के कुछ ही समय बाद बंगाल में नई उलझनें पैदा हो गई।

मीरजाफ़र का गद्दी से उतारा जाना

जब से मीरजाफ़र ने शाहज़ादा अलीगौहर के विरुद्ध अंग्रेज़ों से सैनिक सहायता मांगी थी, तभी से कलकत्ता के अंग्रेज़ अधिकारियों ने अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा दी थी। मीरजाफ़र ने इस ज़्यादा ख़र्च को देने का वचन दिया था, परंतु दी उसने एक पाई भी न थी। मुर्शिदाबाद का ख़ज़ाना बिलकुल खाली हो गया था। स्थानीय अधिकारियों और जागीरदारों ने कर देना बिलकुल बंद कर दिया था।

मीरजाफ़र भी शासन-प्रबंध के विषयों पर ध्यान न देता था। अंत को निश्चय किया गया कि उसके दामाद मीरक़ासिम को नायब नवाब बनाया जाय। मीरजाफ़र ने इस विचार को पसंद न किया। अंत को सन् १७६१ में उसे गद्दी से उतार दिया गया और मीरक़ासिम को बंगाल और बिहार की गद्दी पर बैठाया गया। उसने कंपनी को इसके बदले में चटागांव, बर्दवान और मिदनापुर के ज़िलों की मालगुज़ारी दी। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ अधिकारियों को भी बहुत-सा रुपया दिया गया।

मीरक़ासिम १७६०-१७६१

मीरक़ासिम योग्य व्यक्ति था। उसने यह अनुभव किया कि प्लासी के युद्ध के बाद से सब सैनिक शक्ति ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में चली गई है। इसलिए अपनी सत्ता की फिर स्थापना के लिए यह ज़रूरी था कि वह अपनी सेना का संगठन करे, परंतु कठिनाई यह थी कि मुर्शिदाबाद के खजाने में पैसा बिलकुल न था। फ़र्रुखसियर के समय से लेकर अंग्रेज़ी माल के आयात और निर्यात पर कोई चुंगी नहीं लगाई गई थी। परंतु अन्य अंतर्देशीय व्यापार पर चुँगी थी। प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेज़ व्यापारियों ने अंतर्देशीय व्यापार में भी भाग लेना शुरू कर दिया और किसी को साहस न होता था कि उनसे माल इधर-उधर ले जाने पर महसूल मांगे। इसका प्रभाव यह हुआ कि सारा अंतर्देशीय व्यापार भी अंग्रेज़ों के हाथों में चला गया। नवाब की आय को बहुत भारी हानि पहुँची। उसने विरोध किया परंतु व्यर्थ। अंत को भारतीय व्यापारियों के हित की रक्षा के विचार से मीरक़ासिम ने सब महसूल माफ़ कर दिया। कलकत्ता के अंग्रेज़ व्यापारियों को मीरक़ासिम की यह बात बहुत बुरी लगी। सन १७६३ में नवाब के सिपाहियों की अंग्रेज़ सिपाहियों से मुठभेड़ हो गई। अब मीरक़ासिम ने अवध के नवाब शुजा-उद्दौला और शाहज़ादा अलीगोहर से, जो अब शाह-आलम दूसरे के नाम से बादशाह

बन चुका था, सहायता मांगी। वह मुंगेर से मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ा, परंतु हारा और पटना की तरफ़ भागा। पटना पहुँच कर उसने सब अंग्रेज़ों को, जो नगर में थे, मरवा डाला। अब अंग्रेज़ी सेना भी पटना की ओर बढ़ी। मीरक़ासिम को अवध जाकर आश्रय लेना पड़ा। मीरजाफ़र को फिर बंगाल की गद्दी पर बैठा दिया गया।

बक्सर की लड़ाई

मीरक़ासिम ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला और बादशाह शाहआलम की सेनाओं को लेकर बिहार पर आक्रमण किया। उस समय मेजर मुनरो अंग्रेज़ी सेना का सेनापति था। उसने सन् १७६४ में बक्सर की लड़ाई में इन सम्मिलित सेना को हरा दिया। मीरक़ासिम की सत्ता अब सदैव के लिए जाती रही और मीरजाफ़र भी कुछ समय के बाद उसका छोटी उमर का बेटा नज्म-उद्दौला गद्दी पर बैठा।

दीवानी का अधिकार

सन् १७६५ में मीरजाफ़र के मरने के थोड़े ही दिनों बाद क्लाइव बंगाल को फिर वापस लौट आया। शुजाउद्दौला और शाहआलम अभी तक बिहार की सीमा पर ही थे। क्लाइव बंगाल और बिहार का शासन-प्रबंध कर इलाहाबाद की ओर बढ़ा। यहां पर संधि हुई। शुजाउद्दौला ने अपने प्रदेश में अंग्रेज़ी माल पर का आयात और निर्यात कर माफ़ कर दिया। अंग्रेज़ी सरकार ने शाहआलम को बंगाल और बिहार की मालगुज़ारी में से २६ लाख वार्षिक देना स्वीकार किया। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी बंगाल और बिहार प्रांतों की दीवान नियुक्त की गई। दीवानी का अधिकार मिलने के बाद अंग्रेज़ी सरकार और नवाब नज्मउद्दौला में एक नई संधि हुई। इस संधि के अनुसार नवाब ने अंग्रेज़ अधिकारियों को प्रांतों की सब मालगुज़ारी वसूल करने का अधिकार दिया और इसके बदले सेना रखने और राज्य का प्रबंध करने के लिए उसे ५४ लाख रुपया वार्षिक दिया गया।

लार्ड क्लाइव का शासन-काल

अंग्रेज़ी अधिकारी अभी तक भारतीयों के मालगुज़ारी के ढंग से परिचित न थे, इसलिए ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों ने यह निश्चय किया कि भारतीय ज़मींदारों, राजाओं और नवाबों के द्वारा ही मालगुज़ारी वसूल की जाती रहा करे। यदि इनमें से कोई मालगुज़ारी के देने में गड़बड़ करे तो सेना की सहायता ली जाय। इस तरह प्रबंध का कुछ काम तो नवाब की सरकार के हाथों में रहा और कुछ अंग्रेज़ी सरकार के हाथों में आया। यह प्रणाली, जो द्वैध-शासन के नाम से प्रसिद्ध है, सन् १७७२ तक रही। द्वैध-शासन की इस प्रणाली को ठीक कर क्लाइव ने बंगाल में कंपनी के मामलों में सुधार की ओर अपना ध्यान फेरा। उसने बंगाल में अंग्रेज़ व्यापारियों का व्यक्तिगत व्यापार बंद कर दिया और दीवानी की आमदन में से अढ़ाई प्रति सैंकड़ा कंपनी के कर्मचारियों में बांटने के लिए अलग कर दिया। अब क्योंकि बंगाल में बाहर से कोई डर न था, इसलिए उसने सैनिकों का भत्ता घटा कर दुगुने से एक गुना ही रहने दिया। इससे क्लाइव की सर्वप्रियता जाती रही और उसके कई शत्रु बन गए। वह सन् १७६७ में इंगलैंड वापस चला गया। सन् १७७० में बंगाल में अत्यंत भयानक दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे प्रांत की जन-संख्या एक-तिहाई ही रह गई। इस अवधि में अंग्रेज़ अफ़सरों के विरुद्ध बहुत से अभियोग लगाये गये। उन्होंने बदले में भारतीय अफ़सरों पर दोष लगाये। अंत में इंगलैंड में डायरेक्टरों ने सन् १७७१ में द्वैध-शासन प्रणाली को हटा दिया। सन १७७२ में वारेन हेस्टिंग्ज़ बंगाल का गवर्नर युक्त हुआ। लार्ड वेलेज़ली के समय में सन् १८०५ तक ब्रिटिश राज्य खूब बढ़ गया।

प्रश्न

१. मीरक़ासिम पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९३८)

२. क्लाइव पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९२९)

३. लार्ड क्लाइव के स्वभाव तथा कार्यों को सावधानी से समझाओ। उसकी तुम डूपले के साथ कहां तक तुलना कर सकते हैं ?
(मैट्रिक १६४१)

४. नवाब सिराज-उद्दौला पर संक्षिप्त नोट लिखो।
(मैट्रिक १६४२)

५. प्लासी की लड़ाई के कारण और परिणाम लिखो।
(मैट्रिक १६४२)

६. क्लाइव की जीवनी पर एक नोट लिखो और यह बताओ कि अमींचंद का उसके साथ क्या संबंध था ? (भूषण १६३८)

७ अमींचंद पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १६४०)

८. बक्सर की लड़ाई के कारण और परिणाम लिखो।
(मैट्रिक १६२६, भूषण १६४१)

६. मीरजाफ़र के शासन-प्रबंध का वर्णन करो और बताओ कि उसे तख़्त से क्यों उतारा गया ?

१०. भारत के इतिहास में मीरजाफ़र ने क्या भाग लिया ?

११. मीरकासिम के शासन-प्रबंध का हाल लिखो और बताओ कि कलकत्ता के अंग्रेज़-अधिकारियों से उसका युद्ध क्यों शुरू हुआ।

१२. किन परिस्थितियों में ईस्ट इंडिया कंपनी को दीवानी के अधिकार दिए गए ?

१३ क्लाइव के शासन-प्रबंध का वर्णन करो।

१४. प्लासी और लाल्सवाड़ी की लड़ाइयों के साथ किन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का संबंध है ?

१५. भारत में रावर्ट क्लाइव के जीवन-चरित का वर्णन करो। क्या तुम इस कथन का भाव स्पष्ट कर सकते हो:—"क्लाइव स्वयं भारत में अंग्रेज़ों के इतिहास का संक्षेप है।"

छठा अध्याय

वारेन हेस्टिंग्ज़ १७७२—१७८६

वारेन हेस्टिंग्ज़ १७५० में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी में नौकर हुआ था और तब से कई कारखानों में काम कर चुका था। वह एक बहुत अनुभवी अफ़सर था। गवर्नरी का काम संभालते ही उसने सब शासन-प्रबंध अपने हाथ में ले लिया और मुर्शिदाबाद से राजधानी को हटाकर कलकत्ता ले आया। इसी समय के लगभग शाहआलम, जो अंग्रेज़ों को दीवानी का अधिकार सौंपे जाने के समय से लेकर इलाहाबाद में रह रहा था, मराठों की सहायता से दिल्ली वापस आया। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने इस बात को पसंद न किया। इसलिए उसने १७७२ में शाहआलम को २६ लाख रुपया वार्षिक कर देना बंद कर दिया, जिसे कि सन् १७६५ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने देना स्वीकार किया था। इसी समय से यह माना जा सकता है कि ब्रिटिश अधिकारियों ने बंगाल में स्वतंत्र सत्ता ग्रहण की। तब उसने मालगुज़ारी वसूल करने का प्रबंध करने के लिए कलकत्ता में एक रेवेन्यू बोर्ड बनाया, दीवानी मामलों को निपटाने के लिए हर ज़िले में एक दीवानी अदालत और फ़ौजदारी अदालतें बनाई गईं। ज़िलों की अदालतों के फ़ैसले की अपील के लिए उसने कलकत्ता में

वारेन हेस्टिंग्ज़ १७७२—१७८६



वारेन हेस्टिंग्ज़

सदर दीवानी और सदर फौजदारी अदालतें बनाईं। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने प्रबंध संबंधी सब अधिकार आप ले लेने पर नवाब को अब सेना रखने की कोई आवश्यकता न थी। इसलिए नवाब की सेना हटा दी गई और नवाब को दी जाने वाली ५४ लाख की रक़म १८ लाख कर दी गई।

अवध-साम्राज्य तथा अवध और रुहेलों की लड़ाई में अंग्रेज़ों का हस्तक्षेप

अवध-साम्राज्य की नींव निशापुर (खुरासान) के व्यापारी सआदत ख़ाँ ने डाली थी। वह फ़र्रुख़सियर के समय में मुग़लों की नौकरी में प्रविष्ट हुआ था। उसने अपनी योग्यता के कारण जल्दी ही उच्च स्थिति पा ली। वह आगरा प्रांत में हिंडौन का फौजदार बनाया गया। सन १७२० में सैयद भाइयों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए जो षड्यंत्र रचा गया था, उसी सेवा के बदले में पहले उसे आगरा का और बाद को सन् १७२२ में अवध का नवाब बनाया गया था। इसी वर्ष ग़ाज़ीपुर, जौनपुर, बनारस और चुनार के ज़िले भी उसके अधिकार में सौंप दिये गये। सआदत ख़ाँ ने सन् १७२२ से लेकर १७३९ तक शासन किया। इसके बाद उसका बेटा सफ़दर जंग नवाब हुआ और उसने सन् १७३९ से लेकर १७५४ तक राज्य किया। सन् १७४३ में उसने गंगा और जमुना के बीच इलाहाबाद का सारा प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया। उसने इसके बाद उत्तर में रुहेलों की तरफ़, जिन्होंने १७२६ में स्वतंत्र होकर दिल्ली के मुग़ल प्रांत के पूर्वी भाग पर अधिकार जमा लिया था, अपना ध्यान फेरा। अंत में सफ़दर जंग रुहेलों को दबा न सका, इसलिए सन १७५१ में उसने मराठों से सहायता मांगी। रुहेलों पर आक्रमण किया गया और उन्हें विवश कुमाऊं की पहाड़ियों में भाग कर आश्रय लेना पड़ा। परंतु इसी समय अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर दिया था। इसी लिए सफ़दर जंग ने रुहेलों से ५० लाख रुपया हर्जाना लेकर उनसे संधि कर

ली और अपने मराठा साथियों सहित रुहेलखंड से चला गया। अब रुहेलखंड पर रुहेला सरदारों का एक संघ शासन करने लगा। इन सरदारों में से नजीब-उद्दौला सब से प्रसिद्ध हुआ है। उसे सन् १७५४ में दिल्ली की मुग़ल सेनाओं का सेनापति बनाया गया था। जब सन् १७५४ में सफ़दरजंग मरा तब उसके बाद उसका बेटा शुजाउद्दौला गद्दी पर बैठा और उसने सन् १७५४ से लेकर १७७५ तक अवध पर राज्य किया। परंतु सन् १७५७ के तुरंत बाद सारे उत्तर-भारत में मराठों का प्रभुत्व हो गया। रुहेला सरदार नजीबउद्दौला और अवध के नवाब शुजाउद्दौला दोनों इस बात से बड़े डर गये। उन्होंने फिर अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया। हम पहले ही यह बता चुके हैं कि इन दोनों की सहायता से सन् १७६१ में अहमदशाह अब्दाली ने मराठों को हराया। इसके बाद नजीबउद्दौला को दिल्ली का सेनापति बना दिया गया। जब सन् १७७१ में वह मरा और बादशाह शाहआलम ने मराठों की सहायता से फिर दिल्ली पर अधिकार कर लिया, तब मराठों को यह अवसर मिला कि वे पानीपत की लड़ाई में भाग लेने के लिए रुहेलों को दंड दे सकें। सन् १७७३ में मराठों ने रुहेलों पर चढ़ाई कर दी। रुहेलों ने इस पर अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सहायता मांगी। नवाब ने इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि ४० लाख रुपया उसे दिया जाय। रुहेलों ने इस शर्त को मान लिया। परंतु इन्हीं दिनों पेशवा माधवराव के मर जाने पर दक्षिण में गंभीर स्थिति हो गई थी और मराठों को उत्तर-भारत से लौटना पड़ा। उत्तर-भारत से मराठों के चले जाने के बाद नवाब ने रुहेलों से ४० लाख रुपया मांगा। उन्होंने देने से इनकार कर दिया। इस पर नवाब ने रुहेलों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और बंगाल के अंग्रेज़ अधिकारियों से सहायता मांगी। वारेन हेस्टिंग्ज़ को पहले ही यह डर लग रहा था कि मराठा रुहेलखंड का सत्यानाश कर फिर

अवध की भी खबर लेंगे। अतः मराठों की इस शक्ति को बढ़ने से रोकने के लिए एक ही उपाय था। रुहेलखंड को जीतने के लिए अवध की सहायता की जाय। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने रुहेलखंड के विरुद्ध अंग्रेज़ी सेना को भेजना मान लिया और नवाब ने यह वचन दिया कि उसे जो ४० लाख रुपया रुहेलों से मिलेगा, वह अंग्रेज़ों को दे दिया जायगा। रुहेले हार गये और सन् १७७४ में रुहेलखंड अवध में मिला लिया गया। केवल एक रुहेला सरदार के पास रामपुर की रियासत रहने दी गई। उसके वंशज आज तक रामपुर रियासत में राज करते हैं। सन् १७७५ में नवाब शुजाउद्दौला मर गया और गद्दी उसके बेटे आसफ़उद्दौला को मिली। उसने सन् १७७५ से लेकर १७९७ तक राज्य किया। सन् १७७५ में ब्रिटिश सरकार और नवाब अवध में एक नई संधि हुई। इस संधि के अनुसार बनारस का इलाक़ा राजा चेतसिंह को दे दिया गया और उसने अंग्रेज़ी सरकार का आधिपत्य मान लिया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट सन् १७७३

हम पहले देख ही चुके हैं कि सन् १७७० में बंगाल में एक महा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा, और सन् १७७१ में डायरेक्टरों के बोर्ड ने यह निर्णय किया कि बंगाल और बिहार में मालगुज़ारी की वसूली आप कराई जाय। सन् १७७२ में वारेन हेस्टिंग्ज़ ने बंगाल की आमदन में से शाहआलम को २६ लाख की रक़म देना बंद कर ब्रिटिश गवर्नमेंट को दिल्ली के मुग़ल अधिकारियों से बिलकुल स्वतंत्र बना लिया। चाहे भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की समृद्धि ऊपर से बढ़ती हुई मालूम होती थी, परंतु इंगलैंड में उस पर जल्दी-जल्दी ऋण चढ़ रहा था। इसलिए ब्रिटिश पार्लियामेंट ने यह आवश्यक समझा कि भारत में कंपनी के मामलों पर उचित नियंत्रण रखने के लिए एक क़ानून पास किया जाय। इसलिए सन् १७७३ में रेग्यूलेटिंग एक्ट पास किया गया। इस एक्ट के अनुसार कलकत्ता, मद्रास और बंबई

परंतु उसके लिए उसने नियमपूर्वक रुपया नहीं दिया था। इस हिसाब में नवाब आसफ़-उद्दौला पर बहुत सी रक़म बाकी थी। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने इस धन का निपटारा करने पर ज़ोर दिया। नवाब ने अपनी असमर्थता प्रकट की और कहा कि यदि स्वर्गीय नवाब शुजाउद्दौला की बेगमों से हीरे-जवाहरात और धन की वसूली में मुझे सहायता दी जाय तो मैं अपनी बाक़ी रक़म चुकता कर दूंगा। वारेन हेस्टिंग्ज़ को रुपये की बहुत ज़रूरत थी। साथ ही यह विश्वास भी किया जाता था कि बेगमों ने गुप्त रूप से बनारस के राजा चेतसिंह को सहायता दी थी। इसलिए वारेन हेस्टिंग्ज़ ने फ़ैज़ाबाद को एक अंग्रेज़ी सेना भेजी और बेगमों को तंग कर उनसे ७० लाख रुपया ऐंठ लिया। यह सन् १७८१ की घटना है।

वारेन हेस्टिंग्ज़ का आचरण

वारेन हेस्टिंग्ज़ एक दृढ़ चित्त, दूरदर्शी और परिश्रमी राजनीतिज्ञ था। भय के अवसरों पर वह कभी दिल छोड़ता न था, परंतु इसमें भी कोई संदेह नहीं कि राजा चेतसिंह और अवध की बेगमों से उसने बहुत क्रूरता का वर्ताव किया था। बाद को इसके लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट में उस पर अभियोग लगाये गये, परंतु एक लंबी सुनवाई के बाद उसे सम्मान पूर्वक छोड़ दिया गया। उसके कुछ शत्रुओं ने नंदकुमार नामक एक ब्राह्मण को उकसाया कि वह वारेन हेस्टिंग्ज़ पर घूंसखोरी और बुरे वर्ताव के अभियोग लगाए, परंतु इनमें भी उसे बरी कर दिया गया। उलटे नंदकुमार पर जालसाज़ी का अभियोग चला और ब्रिटिश क़ानून के अनुसार कलकत्ता की सुप्रीम कोर्ट ने उसे फाँसी का दंड दिया। परंतु जब हम इस बात का विचार करते हैं कि उसके समय में ब्रिटिश सरकार बहुत ही भयंकर अवस्थाओं में से गुज़र रही थी, तब हमें यह मानना पड़ता है कि भारत में शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का श्रेय वारेन हेस्टिंग्ज़ को ही है। इस काल में अंग्रेज़ों के हाथ से उनका अमरीकन साम्राज्य जाता रहा, परंतु

भारत में नया साम्राज्य स्थापित हुआ। वारेन हेस्टिंगज़ ने सन् १७८६ में अवकाश पाया और उसके बाद लार्ड कार्नवालिस, जो अमरीका में अमरीकन स्वातंत्र्य युद्ध के समय लड़ चुका था, गवर्नर बना।

प्रश्न

१. वारन हेस्टिंग्ज के शासन-काल का वर्णन करो जिसमें (क) रुहेलों की लड़ाई (ख) नंदकुमार का मुकदमा, (ग) अवध की बेगमें और (घ) राजा चेतसिंह का विशेष उल्लेख हो। (मैट्रिक १६४०)

२. चेतसिंह पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १६३८)

३. पिट्स इंडिया एक्ट पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १६३६)

४. नंदकुमार पर नोट लिखो।

५. वारेन हेस्टिंगज़ की आर्थिक कठिनाइयों पर एक नोट लिखो और बताओ कि उसने किन उपायों से धन प्राप्त किया ?

६. भारत में ब्रिटिश शक्ति स्थापित करने में वारेन हेस्टिंग्ज़ का कहां तक हाथ है ?

सातवाँ अध्याय

लार्ड कार्नवालिस १७८६–१७९३, सर जान शोर १७९३–१७९८ और लार्ड वेलेज़ली १७९८–१८०५

लार्ड कार्नवालिस १७८६–१७९३

अपने समय में ही वारेन हेस्टिंगज़ को सन् १७७३ के रेग्यूलेटिंग एक्ट में कई दोष मालूम पड़ गये थे। एक्ज़ेक्टिव कौंसिल में सब मामले बहुमत से पास होते थे, इसलिए बहुत से अवसरों पर गवर्नर जनरल का अल्प मत हो जाता था। ऐसा

परिस्थितियों में उसे एक ऐसी नीति का पालन करना पड़ता था, जिसे वह स्वयं नहीं चाहता था। इसीलिए वारेन हेस्टिंगज़ को बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसके उत्तराधिकारी लार्ड कार्नवालिस ने जब वह इंगलैंड में ही था, इस बात पर ज़ोर दिया कि विशेष परिस्थितियों में गवर्नर जनरल एग्ज़ेक्टिव कौंसिल के निर्णय को अस्वीकार करने का अधिकार दिया जाय। फिर वारेन हेस्टिंगज़ के युद्धों में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी पर बहुत-सा ऋण हो गया था और यह उचित समझा गया कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारों को कम किया जाय। अतः सन् १७८४ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक क़ानून पास किया जो कि "पिट्‌स इंडिया एक्ट" के नाम से प्रसिद्ध है। इस क़ानून द्वारा भारत के अंग्रेज़ी प्रदेशों को एक बोर्ड आव कंट्रोल" (Board of control) के अधीन कर दिया गया। इस बोर्ड के सदस्यों की नियुक्ति इंगलैंड की सरकार करती थी। इंगलैंड का प्रधान मंत्री इसी बोर्ड के एक सदस्य को बोर्ड का प्रधान नियुक्त करता था। इस क़ानून के पास हो जाने से इंगलैंड का कोर्ट आव डायरेक्टर्स (Court of Directors) अथवा भारत के अंग्रेज़ अधिकारी बिना ब्रिटिश पार्लियामेंट की स्वीकृति के युद्ध या संधि नहीं कर सकते थे। इस क़ानून के द्वारा भारत के सुप्रीम कोर्ट (उच्च अदालत) के अधिकार भी और अधिक निश्चित कर दिए गए।

लार्ड कार्नवालिस द्वारा सिविल सर्विस का सुधार

लार्ड कार्नवालिस ने अधिकार संपन्न होने पर सबसे पहला काम यह किया कि उसने भारत में सिविल सर्विसों को नए क्रम से रखा। पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों को बहुत कम वेतन दिया जाता था। परंतु उन्हें व्यक्तिगत व्यापार करने की आज्ञा थी, इसलिए वे बहुत लाभ उठा लेते थे। सन १७६६ में लार्ड क्लाइव ने कंपनी के कर्मचारियों को व्यक्तिगत

व्यापार करने से मना कर दिया और, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, उसने उनकी हानि की पूर्ति करने के लिए दीवानी आमदन में से अढ़ाई प्रति सैकड़ा अलग कर दिया। परंतु इन उपायों से भी व्यक्तिगत व्यापार बंद नहीं हुआ। अब कंपनी के व्यापारियों ने अपने मारवाड़ी गुमाश्तों के नाम पर व्यापार करना शुरू कर दिया। जब सन् १७७२ में मुग़ल-साम्राज्य के स्थान पर बंगाल और बिहार में स्वतंत्र अंग्रेज़ी राज्य स्थापित हो गया, तब सरकारी कर्मचारियों को आमदन का कुछ प्रतिशत देने का नियम अनुचित समझा गया। लार्ड कार्नवालिस ने इस प्रणाली को उड़ा दिया और निश्चित वेतन की परिपाटी चलाई। परंतु प्रतिशत कमीशन के कारण सरकारी कर्मचारियों को बहुत कुछ मिल जाता था, इसलिए उनके वेतन भी बहुत अधिक निश्चित करने पड़े।

लार्ड कार्नवालिस के प्रबंध-संबंधी सुधार

सिविल सर्विस का फिर क्रम बना कर लार्ड कार्नवालिस ने अब देश के प्रबंध संबंधी मामलों का और अपना ध्यान किया। उसने हर ज़िले में एक-एक दीवानी और फ़ौजदारी अदालत क़ायम की और यूरोपियन अफ़सरों को इन अदालतों का जज बनाया। अब तक मालगुज़ारी की वसूली का काम भारतीय ज़मींदारों और अमीनों के हाथों में था। लार्ड कार्नवालिस ने हर ज़िले में इसके लिए कलेक्टर नियुक्त किये। सब क़ानूनी अदालतों के लिए एक पृथक् नाज़ीरात (क़ानून ग्रंथ) की रचना की गई। भारतीयों की योग्यता में लार्ड कार्नवालिस को विश्वास न था, इसीलिए उन्हें छोटी-छोटी नौकरियों के ही पद दिए गए। विश्वास और उत्तरदायित्व के सब स्थानों पर यूरोपियनों को रक्खा गया।

स्थायी बंदोबस्त

भारत में लार्ड कार्नवालिस का सबसे बड़ा काम स्थायी बंदोबस्त है। अकबर के समय में राजा टोडरमल ने भूमि-कर भूमि के अनुसार प्रति बीघे के हिसाब से लगाया था। परंतु सन

१७०७ में औरंगज़ेब के मरने के बाद जब देश में अशांति फैल गई, तब यह निश्चित रक़म वसूल न की जा सकी। अंत को स्थानीय अधिकारियों और ज़मींदारों को भूमि-कर की वसूली का ज़िम्मेवार ठहराया गया। जब उनसे भी मालिया वसूल होता नजर न आया, तब इसे कुछ ऐसे आदमियों को सौंप दिया गया, जिन्होंने इसको वसूल करने का ज़िम्मा लिया। इससे देश में लगान की प्रथा चल पड़ी। वर्ष में एक निश्चित दिन, नये दशहरे को, सब ज़मींदारों और किसानों को दरबार में उपस्थित होना पड़ता था और वहाँ हर एक को सरकार के साथ यह ठेका करना पड़ता था कि वह साल में इतनी रक़म सरकार को देगा। जब सन् १७६५ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को दीवानी का अधिकार मिला, तब उन्होंने भी यही लगान की प्रणाली जारी रखी। परंतु लगान का हर साल निश्चित करने का काम सरकार और किसान दोनों के लिए बड़ा बुरा था। जब सन् १७७२ में वारेन हेस्टिंग्ज़ ने शासन-भार लिया, तब उसने एक वर्ष के स्थान पर पाँच वर्ष के लिए जुताई के पट्टे जारी किए। परंतु इस समय लोगों ने लगान की रक़म को इतना चढ़ा दिया कि बहुत कम किसान निश्चित रक़म दे सकते थे। अंत में सन् १७७७ में फिर वार्षिक लगान निश्चित करने की प्रथा जारी की गई। परंतु इस प्रथा को इंगलैंड के अधिकारियों ने पसंद नहीं किया। इसलिए जब लार्ड कार्नवालिस को बंगाल का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया, तब उसे विशेष आदेश दिया गया कि वह भारत में भूमि-कर स्थायी रूप से निश्चित कर दे। पिछले कई वर्षों के लगान की जाँच की गई और उसी की औसत पर एक वार्षिक रक़म निश्चित की गई। अंत में सन् १७८९ में पिछले दस वर्षों की संख्या की औसत लगान के रूप में निश्चित की गई। सन् १७९३ में यही वार्षिक कर निश्चित कर दिया गया। इस रक़म की वसूली का प्रबंध उन लोगों के साथ किया गया, जो मुग़ल-शासन में मालगुज़ारी वसूल करते थे।

ब्रिटिश सरकार ने अब उन्हें भूमि का स्वामी स्वीकार किया और वास्तविक मालिक केवल किसान (जुताई करने वाले) बना दिए गये। इससे सरकार को एक लाभ यह हुआ कि अब उन्हें एक निश्चित रक़म मिलने का विश्वास हो गया और ज़मींदारों को यह लाभ हुआ कि उनकी यह चिंता दूर हो गई कि कहीं आगे लगान बढ़ा न दिया जाय।

मैसूर की तीसरी लड़ाई १७९१-९२

लार्ड कार्नवालिस के समय में केवल मैसूर की तीसरी लड़ाई हुई। हम पहले बता चुके हैं (देखो पृष्ठ ३९-४०) कि टीपू सुलतान ने ब्रिटिश सरकार के मित्र ट्रावनकोर पर आक्रमण किया। इस पर ब्रिटिश अधिकारियों ने मराठों और हैदराबाद से मिल कर टीपू सुलतान के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। वह सन् १७९२ में हार गया और उसे अपने राज्य का आधा-भाग शत्रुओं को देना पड़ा। इसके साथ उसे तीन करोड़ रुपया भी लड़ाई के हरजाने में देना पड़ा। डेढ़ करोड़ रुपया तो उसी समय ले लिया गया और बाक़ी डेढ़ करोड़ के बदले टीपू ने दोनों बेटे धरोहर रख दिये।

सर जान शोर १७९३-१७९८

गवर्नर जनरल नियुक्त होने से पहले सर जान शोर कंपनी में नौकरी करता था। उसे यह आदेश मिला कि वह देशी राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप न करे। परंतु जब सन् १७९७ में नवाब आसफ़-उद्दौला मरा और उसका बेटा वज़ीर अली गद्दी पर बैठा, तब सर जान शोर को विवश अवध के मामलों में हस्तक्षेप करना पड़ा। उसे यह पता लगा कि वज़ीर अली मैसूर के टीपू सुलतान और काबुल के बादशाह शाहज़मान के साथ मिला हुआ है। उसे यह भी विदित हुआ कि वह नवाब का असली बेटा नहीं, बल्कि लखनऊ की गद्दी का असली उत्तराधिकारी आसफ़-उद्दौला का छोटा भाई सआदत अली

खाँ है। सर जान शोर ने अपनी सेना को लखनऊ पर धावा बोलने की आज्ञा दी। वज़ीर अली गद्दी से उतार दिया गया और उसके स्थान पर सआदत अली खाँ को अवध की गद्दी पर बैठाया गया। सर जान शोर के समय ही मराठों ने नवाब हैदराबाद से कर मांगा था और उसने सर जान शोर से सहायता माँगी थी, परंतु सर जान शोर तटस्थ रहा। इस तटस्थ रहने की नीति से टीपू का भी उत्साह बढ़ गया। उसने फ्राँस और अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह शाहज़मान से सहायता माँगी। सन् १७९९ मे शाहज़मान ने पंजाब पर आक्रमण किया और लाहौर पर अधिकार कर लिया, परंतु उसे शीघ्र ही वापिस लौट जाना पड़ा, क्योंकि फ़ारस के बादशाह ने अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई कर दी थी।

लार्ड वेलेजली १७९८–१८०५

मार्कस आव वेलेज़ली १७९८–१८०५

जब मार्कस आव वेलेज़ली को बंगाल का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया, तब इंगलैंड का क्रांतिकारी फ्राँस से युद्ध हो रहा था। फ्राँसीसी सेनापति नेपोलियन बोनापार्ट ने स्थल-मार्ग द्वारा भारतवर्ष पर चढ़ाई करने के विचार से मिश्र पर आक्रमण कर दिया था। ब्रिटिश सरकार को यह पता था कि टीपू सुलतान ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जुटाव कर रहा है और इसी उद्देश से हैदराबाद के निज़ामअली, अवध के नवाब वज़ीरअली, काबुल के बादशाह शाहज़मान और मिश्र में नेपोलियन बोनापार्ट से पत्र-व्यवहार कर रहा है। उसे यह



लार्ड वेलेज़ली

भी मालूम हुआ कि मैसूर, हैदराबाद और महाराष्ट्र में बहुत-से फ्रांसीसी सैनिक नौकर हैं। इन परिस्थितियों में लार्ड वेलेज़ली ने यह निश्चय किया कि फ्राँसीसियों को भारत से बिलकुल निकाल दिया जाय और भारत के देशी राज्यों और नवाबों को ब्रिटिश सरकार की संरक्षता में केवल अधीन राज्य बना दिया जाय।

सहायक-व्यवस्था

सब से पहले लार्ड वेलेज़ली निज़ाम हैदराबाद के पास पहुँचा सन् १७९५ की खुरदा की हार से निज़ामअली की ताकत बहुत कमज़ोर हो गई थी। लार्ड वेलेज़ली ने उसके सामने एक सहायक संधि पेश की। इस संधि द्वारा निज़ाम हैदराबाद से कहा गया कि वह अपने राज्य में, राज्य की रक्षा के लिए, ६००० अंग्रेज़ी सैनिक रखे और उनका खर्च स्वयं दे। निज़ामअली ने इसे मान लिया और सब फ्रांसीसियों को अपनी नौकरी से निकालने पर सहमत हो गया। उसने वचन दिया कि वह आगे से किसी भी विदेशी को ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति के बिना नौकर न रक्खेगा। यदि भारत के किसी और राज्य से उसका झगड़ा हो जाय तो उसको निपटाने के लिए वह ब्रिटिश सरकार को पंच बनायेगा। इस संधि पर सन् १७९८ में हस्ताक्षर हो गए और हैदराबाद ब्रिटिश सरकार का संरक्षित राज्य बन गया। सब फ्रांसीसी सैनिकों को हैदराबाद से निकाल दिया गया। हैदराबाद से निपट कर लार्ड वेलेज़ली ने टीपू सुलतान से इसी प्रकार की सहायक संधि करनी चाही, परन्तु टीपू सुलतान ने साफ जवाब दे दिया। इस पर वेलेज़ली ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और जैसा कि हम बता चुके हैं (देखो पृष्ठ ५०), सन् १७९९ में मैसूर की चौथी लड़ाई हुई। टीपू सुलतान की हार हुई और वह युद्ध में मारा गया। उसका राज्य प्राचीन हिंदू वंश के प्रतिनिधि कृष्णराज को सौंप दिया गया। मैसूर राज्य ने ब्रिटिश सरकार की अधीनता में रहना स्वीकार किया। इसके बाद सन् १८०१

में वेलेज़ली ने अवध के नवाब सआदत-अलीखाँ पर इस बात के लिए ज़ोर डाला कि वह सहायक संधि को मान ले, लखनऊ में अंग्रेज़ी सेना रक्खे और इस सेना के खर्च के लिए गोरखपुर, इलाहाबाद और रुहेलखंड के इलाके ब्रिटिश सरकार को दे दे।

मदरास प्रांत

उसी वर्ष अर्काट भी ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया और नवाब मुहम्मद अली के उत्तराधिकारी के परिवार को पेंशन दे दी गई। जब सन् १८१२ में तंजौर का मराठा राजा निस्संतान मर गया, तब वह राज्य भी अँग्रेज़ी साम्राज्य में मिला लिया गया। अर्काट, तंजौर और मैसूर के जीते हुए प्रदेश इन सब को मिला कर मदरास प्रांत की स्थापना की गई।

वेलेज़ली और मराठे

इस प्रकार दक्षिण और उत्तर में अपनी स्थिति को दृढ़ कर अब वेलेज़ली ने मराठों की ओर अपना ध्यान किया। हम यह पहले बता चुके हैं (देखो पृष्ठ ३२-३६) कि बाजीराव दूसरे ने सन् १८०२ में सहायक बनना मान लिया था। इसी से अंग्रेज़ और मराठों की दूसरी और तीसरी लड़ाई का आरंभ हुआ था और उसके परिणाम-रूप पाँचों मराठा राज्य—नागपुर का भोंसला, ग्वालियर का सिंधिया, इंदौर का होलकर, बड़ोदा का गायकवाड़ और पूना का पेशवा—ब्रिटिश सरकार के आधिपत्य में हो गए।

ब्रिटिश-राज्य की वृद्धि

उड़ीसा, आगरा, मेरठ तथा दिल्ली के प्रांत ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिए गए। अब ब्रिटिश शक्ति भारत में प्रधान शक्ति हो गई और बादशाह शाह आलम भी ब्रिटिश सरकार का पेनशनिया बन गया। इस प्रकार लार्ड वेलेज़ली ने अपने शासन-काल में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता स्थापित की। केवल पंजाब, काश्मीर,

उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत, काबुल, बलोचिस्तान, सिंध और राजपूताना ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर मुग़ल राज्य में रह गये। परंतु भारत में ब्रिटिश राज्य के इस आकस्मिक विस्तार से इंगलैंड में डायरेक्टरों का कोर्ट इतना डर गया कि सन् १८०५ में उन्होंने लार्ड वेलेज़ली को वापस बुला लिया और लार्ड कार्नवालिस को दुबारा भारत भेजा। परंतु अब भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता स्थापित हो चुकी थी और इसी समय से हम को सारे भारत का क्रम-पूर्वक सम्मिलित इतिहास मिलता है।

प्रश्न

१. संक्षेप से मैसूर की चौथी लड़ाई के कारण, मुख्य घटनायें और परिणाम लिखो। (मैट्रिक १९३७)

२. लार्ड कार्नवालिस के भिन्न-भिन्न सुधारों का वर्णन करो और स्थायी बंदोबस्त के गुण-अवगुण की आलोचना करो। (मैट्रिक १९३८)

३. लार्ड वेलेज़ली के शासन-काल की मुख्य घटनायें क्या-क्या हैं ? (भूषण, मैट्रिक १९३९)

४ बंगाल के स्थायी बंदोबस्त और लार्ड वेलेज़ली की 'सहायक व्यवस्था' पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९४१)

५. लार्ड वेलेज़ली के शासन-काल का संक्षेप से वर्णन करो जिसमें उसकी (क) नीति, (ख) सहायक-व्यवस्था, और (ग) लड़ाइयों का विशेष उल्लेख हो। (मैट्रिक १९३९)

६. स्थायी बंदोबस्त पर एक नोट लिखो और यह बताओ कि इससे प्रजा को क्या लाभ और हानि हुई। (भूषण १९३८)

७. मैसूर की तीसरी लड़ाई के कारण लिखो। (भूषण १९४१)

८. लार्ड कार्नवालिस के शासन-प्रबंध का वर्णन करो।
(भूषण १९४१)

९. सन् १८०२ में भारत की राजनीतिक स्थिति का संक्षेप से

वर्णन करो और एक नकशा खींच कर अपने उत्तर को स्पष्ट करो।

१०. भारत में अंग्रेज़ी शक्ति को प्रधान शक्ति बनाने में वेलेज़ली का कहाँ तक हाथ है?

११. लार्ड वेलेज़ली को "कंपनी वंश का अकबर कहा जाता है" यह अनुमान कहां तक सत्य है?

आठवाँ अध्याय

उत्तर-पश्चिमी भारत १७१९—१८०५

सन् १७२३ में सयादत खाँ ने अवध की रियासत की नींव रखी थी।

अवध की रियासत का सूत्रपात

सआदत खाँ वास्तव में खुरासान का रहने वाला नेशापुर का एक व्यापारी था। उसका असली नाम मुहम्मद अमीन था। बादशाह फ़र्रुख़सियर के समय में वह बादशाह के खास सवारों में नौकर हुआ और उसे एक हज़ारी का पद दिया गया था। अपनी बुद्धि और बल द्वारा वह शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा और आगरा

लगा रहा। परंतु जब सन् १७२९ में बुंदेले स्वतंत्र हो गए और इसके बाद मराठों ने भी इलाहाबाद प्रांत और आगरा के दक्षिणी भागों में लूट-मार मचानी आरंभ कर दी और वज़ीर कमरुद्दीन, अमीर खान दौरान और दूसरे शाही उमरा उनका सामना न कर सके, तब सआदत खाँ को चिंता हुई कि मराठे कहीं अवध और इलाहाबाद पर भी हाथ साफ न कर दें। इसलिए सन् १७३७ में वह गंगा को पार करके मराठों का सामना करने को बढ़ा और, जैसा हम पहले बता आए हैं, उसने कालपी पर मल्हार राव होलकर को बुरी तरह हराया। जब सन् १७३९ में सआदत खाँ मरा, तब उसके स्थान पर उसका बेटा सफ़दर जंग अवध का नवाब माना गया। सफ़दर जंग ने सन् १७३९ से १७५४ तक राज्य किया। उसके समय इलाहाबाद का इलाक़ा सन् १७३४ में और फ़र्रुखाबाद रियासत का आधा भाग सन् १७५१ में अवध रियासत में मिल गया। सफ़दर जंग के मरने पर उसका लड़का नवाब शुजा-उद्दौला को दिल्ली-साम्राज्य का मंत्री बना दिया और रुहेला सरदार नजीब-उद्दौला को सेनापति।

उस समय इलाहाबाद प्रांत चार बड़े-बड़े भागों में बँटा था—बनारस, इलाहाबाद, बुंदेलखंड, और बघेलखंड।

इलाहाबाद प्रांत

बनारस तो सन् १७२२ में सआदत खाँ को मिल गया। इस प्रांत में इलाहाबाद का इलाक़ा मुहम्मदखां बंगश के आधीन था, परंतु उसमें से जमुना के किनारे तक का दक्षिणी भाग शीघ्र ही बुंदेलों ने जीत लिया था। मुहम्मद खां बंगश सन् १७२४ में बुंदेलों का दमन करने के लिए अपनी सेना लेकर बढ़ा परंतु दूसरी ओर मराठों ने ग्वालियर पर चढ़ाई कर दी। मुहम्मद खाँ बंगश को उनके मुकाबले में वहाँ जाना पड़ा। सन् १७२७ में मुहम्मद खां बंगश ने फिर बुंदेलखंड पर चढ़ाई कर दी। थोड़े समय ही में उसने सारे बुंदेलखंड पर अपना अधिकार जमा लिया, परंतु बुंदेले राजा

वर्णन करो और एक नकशा खींच कर अपने उत्तर को स्पष्ट करो।

१०. भारत में अंग्रेज़ी शक्ति को प्रधान शक्ति बनाने में वेलेज़ली का कहाँ तक हाथ है?

११. लार्ड वेलेज़ली को "कंपनी वंश का अकबर कहा जाता है". यह अनुमान कहां तक सत्य है?

आठवाँ अध्याय

उत्तर-पश्चिमी भारत १७१९—१८०५

सन् १७२३ में सयादत खाँ ने अवध की रियासत की नींव रखी थी।

अवध की रियासत का सूत्रपात

सआदत खाँ वास्तव में खुरासान का रहने वाला नेशापुर का एक व्यापारी था। उसका असली नाम मुहम्मद अमीन था। बादशाह फ़र्रुख़सियर के समय में वह बादशाह के खास सवारों में नौकर हुआ और उसे एक हज़ारी का पद दिया गया था। अपनी बुद्धि और बल द्वारा वह शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा और आगरा प्रांत के इलाक़े में हिंदुओं का सेनापति बना दिया गया। सैयद भाइयों के विरुद्ध षड्यंत्र में वह भी मिला हुआ था। जब सन् १७२० में इस षड्यंत्र से सैयद हुसैन खाँ को मार दिया गया और सैयद अब्दुल्लाह हार कर बंदी हुआ, तब इन सेवाओं के बदले उसे आगरा की सूबेदारी दी गई। परंतु सन् १७२३ में उसको अवध मिल गया और आगरा प्रांत उससे ले लिया गया। उसी वर्ष बादशाह ने इलाहाबाद प्रांत में ग़ाज़ीपुर, जौनपुर, बनारस और चुनार के इलाक़े भी उसके अधिकार में दे दिए। सआदत खाँ ने अवध पर सन् १७२३ से १७३९ तक राज्य किया और इस काल में वह अधिकतर अपने इलाक़े में ही शांति स्थापित करने में

लगा रहा। परंतु जब सन् १७२६ में बुंदेले स्वतंत्र हो गए और इसके बाद मराठों ने भी इलाहाबाद प्रांत और आगरा के दक्षिणी भागों में लूट-मार मचानी आरंभ कर दी और वज़ीर कमरुद्दीन, अमीर खान दौरान और दूसरे शाही उमरा उनका सामना न कर सके, तब सआदत खाँ को चिंता हुई कि मराठे कहीं अवध और इलाहाबाद पर भी हाथ साफ न कर दें। इसलिए सन् १७३७ में वह गंगा को पार करके मराठों का सामना करने को बढ़ा और, जैसा हम पहले बता आए हैं, उसने कालपी पर मल्हार राव होलकर को बुरी तरह हराया। जब सन् १७३९ में सआदत खाँ मरा, तब उसके स्थान पर उसका बेटा सफ़दर जंग अवध का नवाब माना गया। सफ़दर जंग ने सन् १७३९ से १७५४ तक राज्य किया। उसके समय इलाहाबाद का इलाक़ा सन् १७३४ में और फ़र्रुखाबाद रियासत का आधा भाग सन् १७५१ में अवध रियासत में मिल गया। सफ़दर जंग के मरने पर उसका लड़का नवाब शुजा-उद्दौला को दिल्ली-साम्राज्य का मंत्री बना दिया और रुहेला सरदार नजीब-उद्दौला को सेनापति।

उस समय इलाहाबाद प्रांत चार बड़े-बड़े भागों में बँटा था—बनारस, इलाहाबाद, बुंदेलखंड, और बघेलखंड।

इलाहाबाद प्रांत बनारस तो सन् १७२३ में सआदत खाँ को मिल गया। इस प्रांत में इलाहाबाद का इलाक़ा मुहम्मदखां बंगश के आधीन था, परंतु उसमें से जमुना के किनारे तक का दक्षिणी भाग शीघ्र ही बुंदेलों ने जीत लिया था। मुहम्मद खां बंगश सन् १७२४ में बुंदेलों का दमन करने के लिए अपनी सेना लेकर बढ़ा परंतु दूसरी ओर मराठों ने ग्वालियर पर चढ़ाई कर दी। मुहम्मद खाँ बंगश को उनके मुकाबले में वहाँ जाना पड़ा। सन् १७२७ में मुहम्मद खां बंगश ने फिर बुंदेलखंड पर चढ़ाई कर दी। थोड़े समय ही में उसने सारे बुंदेलखंड पर अपना अधिकार जमा लिया, परंतु बुंदेले राजा

छत्रमाल ने बाजीराव को अपनी सहायता के लिए बुलाया। तब मुहम्मद खां बंगश हार गया और उसने बड़ी कठिनाई से अपनी जान बचाई। बुंदेले सन् १७२६ में स्वतंत्र और स्वावलंबी हो गये। इसके बाद मुग़लों के पास इस प्रांत में इलाहाबाद का केवल यह इलाक़ा भी सन् १७४७ में अवध के नवाब को सौंपा गया और मुग़लों द्वारा बनाया गया इलाहाबाद प्रांत अब भारतवर्ष के नक़शे से बिलकुल मिट गया।

आगरा प्रांत

जब सन् १७२० में बादशाह मुहम्मदशाह गद्दी पर बैठा, तब मुग़ल साम्राज्य का ह्रास आरंभ हो चुका था, इसकी शक्ति जाती रही थी और इसका भाग्य-सूर्य अस्ताचल की ओर शीघ्रता से बढ़ रहा था। हर ज़मींदार, फ़ौजदार और जागीरदार के हृदय में यही लालसा थी कि वह स्वतंत्र हो जाय। आगरा व अजमेर के प्रांत में सब से पहले राजपूतों ने विद्रोह का नाद बजाया। अजमेर और नारनौल पर जोधपुर-नरेश अजीतसिंह ने अधिकार जमा लिया। अलवर इत्यादि रियासतों पर जयपुर के राजा जयसिंह ने हाथ साफ़ किये। दक्षिण में काल्पी, झाँसी इत्यादि रियासतों को बुंदेला राजा छत्रमाल दबा बैठा। प्रांत के मध्य में आगरा के पास ही एक जाट ज़मींदार चूड़ामण ने विद्रोह किया था और उसके भतीजे बदनसिंह ने भरतपुर रियासत की नींव रखी। पूर्व में कानपुर, कन्नौज, फ़र्रुख़ाबाद और गंगा के साथ-साथ अलीगढ़ तक का इलाक़ा एक बंगश पठान मुहम्मद खां के हाथ आ गया। सन् १७३७ में जब बाजीराव ने भोपाल के पास निज़ाम-उल-मुल्क को हरा दिया, तब बादशाह मुहम्मदशाह को ग्वालियर और नरवार की दोनों रियासतें भी मराठों को भेंट करनी पड़ीं। अब इस प्रांत में बादशाह के पास मथुरा, अलीगढ़, आगरा और इटावा के सिवाय और कुछ भी बाक़ी न बचा। मराठों के विरुद्ध सेना भेजी गई परंतु परिणाम कुछ भी न निकला। बुंदेलों को दबाने के लिए मुहम्मद खां बंगश को भेजा गया, परंतु वह

भी असफल होकर वापस लौटना पड़ा। सन १७३९ में नादिरशाह के आक्रमण के बाद मुहम्मद खाँ बंगश भी स्वतंत्र हो गया और उसने अलीगढ़ के पास सिकंदरा पर शाही सेना को बुरी तरह हराया। सन् १७५१ में अवध के नवाब सफ़दर जंग ने मराठों की सहायता से फर्रुखाबाद के बंगश पठान अहमद खाँ पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में आक्रमणकारियों की जीत हुई और रियासत दो भागों में बंट गई। एक भाग तो अवध की रियासत में मिल गया और दूसरा मराठों के हाथ आया। परंतु सन् १७६१ की लड़ाई के बाद अहमदशाह बंगश ने यह आधा भाग भी मराठों से छीन लिया।

दिल्ली प्रांत

उस समय दिल्ली प्रांत में रुहेलखंड, मेरठ और अंबाला की तीनों वर्तमान कमिश्नरियां शामिल थीं। सतलुज नदी इस प्रांत की उत्तरीय सीमा थी। दिल्ली प्रांत का उत्तरीय भाग, जिसमें आजकल कुल्कियाँ, अंबाला लुधियाना और फ़ीरोज़पुर के ज़िले हैं, उन दिनों फ़ौजदारी सरहंद का इलाक़ा कहलाता था। औरंगज़ेब के मरने के बाद सन १७०९ में सिक्खों ने उस इलाके में विद्रोह मचाना आरंभ कर दिया। सरहंद का फ़ौजदार मार दिया गया और नगर लूट कर नष्ट कर दिया गया। इस विद्रोह को दबाने के लिए बादशाह बहादुरशाह उत्तर की ओर बढ़ा और अभी यह विद्रोह दब हो पाया था कि बादशाह का देहांत हो गया। फ़र्रुखसियर के समय में सिक्खों ने सरहंद पर फिर आक्रमण किया और इस बार फिर सरहंद का फ़ौजदार मार दिया गया।

रुहेले

दिल्ली प्रांत का पूर्वीय भाग, जिसको आजकल रुहेलखंड कहते हैं, उन दिनों कटहर के नाम से प्रसिद्ध था। बादशाह जहांदरशाह के समय में एक पठान, जिसका नाम दाऊद खां था, सिवाह के पहाड़ी इलाक़े से आकर कटहर में रहने लगा। थोड़े समय ही में उसने अपनी वीरता और

बहादुरी से प्रसिद्धि पा ली। वहां के ज़मींदारों की लड़ाइयों में वह जिसकी भी सहायता करता, उसी की जीत होती। एक बार उसको अहीरों का ६ वर्ष का अनाथ लड़का मिल गया। उसने उसे गोद ले लिया और उसका नाम अली मुहम्मद खां रखा। जब दाऊद खां मर गया, तब अलीमुहम्मद खां रुहेलों का सरदार बना। उसने भी दाऊद खां की भांति कटहर में बराबर लूट-मार जारी रखी। सन् १७३६ में उसने बदायूं और बरेली के कुछ इलाक़ों पर अधिकार जमा लिया। सन् १७३७ में कटहर का अधिकांश भाग उसे मिल गया और वह वहां का नवाब बन गया।

फ़र्रुख़सियर के मारे जाने के बाद मुग़लों के प्रभुत्व का सूर्य वैसे ही प्रायः अस्त हो चुका था, परंतु नादिरशाह के आक्रमण ने तो इस विशाल साम्राज्य की रही-सही शक्ति का भी नाश कर दिया। यहां तक कि बादशाह का दबाव अब दिल्ली और आगरा में भी जाता रहा। अब तो दिल्ली दरबार उपाधिकारियों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए आखेट-भूमि बन गया था। नादिरशाह के जाने के बाद निज़ाम-उल-मुल्क सब में शक्तिशाली था, परंतु जब सन् १७४१ में उसके बेटे नासिर जंग ने विद्रोह का झंडा उठाया, तब उसने एक तूरानी अमीर क़मरुद्दीन को मंत्री बनाया और स्वयं अपने बेटे गाज़ी-उद्दीन, जो क़मरुद्दीन का दामाद भी था, सेनापति बना कर दक्षिण की ओर चल पड़ा। निज़ाम-उल-मुल्क के जाते ही रुहेलों ने रुहेलखंड में शाही फ़ौजदार को हरा कर रुहेलखंड पर अधिकार जमा लिया। रुहेलों की इस जीत से अवध के सूबेदार सफ़दरजंग के कान खड़े हो गये। उसने दिल्ली के बादशाह को सूचना भेजी और उससे सलाह करके बादशाह मुहम्मदशाह ने रुहेलखंड पर चढ़ाई कर दी। सन् १७४६ में रुहेला सरदार हारा और बंदी करके दिल्ली भेजा गया। वहां जाकर वह सरहिंद का फ़ौजदार बनाया गया। सरहिंद में वह सिक्खों के दमन में लगा रहा, परंतु जब सन् १७४८ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया, तब अलीमुहम्मद रुहेलखंड वापस लौटा और थोड़े समय ही में

उसने सारे रुहेलखंड को फिर जीत कर अपने अधिकार में कर लिया। इसके कुछ ही महीनों बाद अलीमुहम्मद मर गया। उस समय उसके दो लड़के अब्दुल्ला खां और फ़ैज़ुल्ला खाँ अहमदशाह अब्दाली के पास कंधार में थे, बाक़ी चार लड़के छोटे थे। इसलिए रियासत के प्रबंध के लिए उसने ११ सरदारों की एक पंचायत बना दी। हाफ़िज़ रहमत-उल्लाह इस पंचायत का प्रधान चुना गया और डौंडे खाँ रियासत का सेनापति बना। जब अली मुहम्मद खाँ मर गया, तब सफ़दर जंग ने सोचा कि रुहेलखंड पर आक्रमण करने का यह बहुत ही अच्छा अवसर है। इसलिए सफ़दर जंग ने मराठों से सहायता मांगी। मराठों ने मदद देना मान लिया और सफ़दर जंग तथा मराठों की सम्मिलित सेनाएँ रुहेलखंड पर चढ़ दौड़ीं और उनकी राजधानी आंवला पर कब्ज़ा कर लिया। मराठों ने अब सारे रुहेलखंड में लूटमार शुरू कर दी और रुहेलों को कुमाऊं की पहाड़ियों में छिपना पड़ा। इन्हीं दिनों में अहमद-शाह अब्दाली ने हिंदुस्तान पर तीसरा आक्रमण किया था। इसलिए सफ़दर जंग ने रुहेलों से पचास लाख रुपया हर्जाना लेकर संधि कर ली और मराठों को साथ लेकर अहमदशाह अब्दाली का सामना करने के लिए बढ़ा। परंतु उसके दिल्ली पहुँचने के पहले ही बादशाह ने अब्दाली को लाहौर और मुलतान के प्रांत देकर संधि कर ली थी।

अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण

जब सन् १७४८ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया, तब मंत्री कमरुद्दीन लड़ाई में मारा गया। इस युद्ध के कुछ ही दिन बाद बादशाह मुहम्मद शाह भी मर गया और उसका लड़का अहमदशाह गद्दी पर बैठा। अहमदशाह ने अवध के सूबेदार सफ़दर जंग को मंत्री बनाया और निज़ाम-उल-मुल्क के बड़े लड़के गाज़ी-उद्दीन को सेनापति। सन् १७५२ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर तीसरी बार आक्रमण कर दिया। मंत्री सफ़दर जंग उस समय

मराठों की सहायता से रुहेलों और फर्रुखाबाद के बंगश पठानों को दबाने में लग रहा था। दिल्ली में सेना का सर्वथा अभाव था, इसलिए बादशाह अहमदशाह ने लाहौर और मुलतान के सूबे अहमदशाह अब्दाली को देकर उससे संधि कर ली। जब सफ़दर जंग मराठों को साथ लेकर दिल्ली पहुँचा, तब अहमदशाह अब्दाली जा चुका था।

दक्षिण में निज़ाम-उल-मुल्क सन् १७५७ में मर चुका था और उसके लड़कों में गद्दी के लिए झगड़ा हो रहा था। उस समय ग़ाज़ी-उद्दीन ने भी यह सोचा कि सफ़दर जंग के सहायक मराठों को साथ लेकर दक्षिण की गद्दी लेनी चाहिये। सफ़दर जंग हृदय से प्रसन्न था। वह चाहता था कि ग़ाज़ी-उद्दीन किसी प्रकार दिल्ली से दूर हो जाय तो अच्छा हो। इसलिए ग़ाज़ी-उद्दीन मराठा सेना लेकर दक्षिण की ओर चल पड़ा और अपने स्थान पर अपने पुत्र शहाब-उद्दीन को सेनापति बना गया। अब दिल्ली में शहाब-उद्दीन और सफ़दर जंग में स्पष्ट रूप से शत्रुता होने लगी। प्रतिदिन दोनों के सिपाही दिल्ली के बाज़ारों में आपस में भिड़ जाते। अंत को मराठों की सहायता से शहाब-उद्दीन ने सफ़दर जंग को इतना तंग किया कि उसने मंत्री-पद से त्याग-पत्र दे दिया। सफ़दर जंग से निपट कर शहाब-उद्दीन ने भरतपुर के जाटों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। परंतु बादशाह अहमदशाह शहाब-उद्दीन से तंग था। उसने भरतपुर के जाट राजा सूरजमल को लिखा — 'घबराओ नहीं, मैं तुम्हारी सहायता पर हूँ।' यह चिट्ठी शहाब-उद्दीन के हाथ आ गई। वह तत्काल दिल्ली वापस आया और उसने बादशाह को बंदी करके उसे मरवा दिया। सन् १७५४ में शहाब-उद्दीन ने जहाँदारशाह के लड़के आलमगीर दूसरे को दिल्ली की गद्दी पर बिठाया, नजीब-उद्दौला खां, जो रुहेलों का सेनापति था, अपना सेनानायक बनाया और स्वयं मंत्री बन बैठा।

इन्हीं दिनों में सफ़दर जंग मर गया और उसका लड़का शुजाउद्दौला अवध की गद्दी पर बैठा। अब शहाब-उद्दीन के लिए मैदान

साफ था। न तो उसको अवध के सूबेदार से डर था, और न जाटों का खटका था। इसलिए इधर से निश्चिन्त होकर उसने लाहौर और मुलतान के सूबों को फिर दिल्ली साम्राज्य में मिलाने का निश्चय किया। शहाब-उद्दीन ने समझा कि पंजाब सहज में जीता जा सकेगा। वह सेना लेकर पंजाब की ओर बढ़ा। लाहौर पर अधिकार जमा कर वह दिल्ली को वापस लौटा और जाते-जाते जालंधर के फ़ौजदार को पंजाब का सूबेदार बना गया। परंतु जब इन घटनाओं की सूचना अहमदशाह अब्दाली को मिली, तब वह सन् १७५६ में चौथी बार सेना लेकर लड़ने के लिए बढ़ा। परंतु लड़ाई शुरू होते ही नजीब-उद्दौला, जिसकी साँठ-गाँठ पहले ही अहमद शाह अब्दाली के साथ थी, अपनी सेना लेकर उसके साथ जा मिला और शहाब-उद्दीन को विवश होकर भागना पड़ा। उसने अहमदशाह अब्दाली से अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी और बड़ी कठिनाई से उसे क्षमा मिली। इसके बाद अहमदशाह अब्दाली ने स्वयं तो दिल्ली पर हाथ साफ़ किया और अपने एक सेनापति को मथुरा और आगरा को लूटने के लिए भेज दिया। वापस जाते समय उसने नजीब-उद्दौला को सेनापति बनाकर दिल्ली का प्रबंध उसे सौंपा और सरहंद का इलाक़ा अपने राज्य में मिला लिया। परंतु अभी उसने पीठ मोड़ी ही थी कि शहाब-उद्दीन ने दिल्ली में वापस आकर नजीब-उद्दौला को वहाँ से निकाल दिया और फ़र्रुख़ाबाद के नवाब अहमद ख़ाँ बंगश को अपना सेनापति बनाया। परंतु अब शहाब-उद्दीन में इतनी ताक़त न रही थी कि वह अकेला नजीब-उद्दौला और उसके रुहेला सरदारों का सामना करता। इसलिए उसने मराठों से सहायता माँगी। बालाजी बाजी राव का भाई रघुनाथ राव पेशवा, जो उस समय ग्वालियर में था, शहाब-उद्दीन की सहायता को आया।

पानीपत की

पिछली बार जाते समय सन् १७५७ में अहमदशाह अब्दाली अपने लड़के तैमूर शाह को पंजाब का सूबेदार बना गया था। जालंधर के फ़ौजदार अदीना बेग

लड़ाई ने, जो तैमूर शाह के विरुद्ध था, मराठों को पंजाब में बुला लिया। अतएव रघुनाथ राव ने सन् १७५८ में तैमूर शाह को पंजाब से निकाल कर अदीनाबेग को अपनी ओर से लाहौर का सूबेदार बना दिया और शक्ति बनाये रखने के लिए कुछ मराठा सेना वहाँ रख दी। इससे मराठों का साम्राज्य सारे भारतवर्ष में फैल गया। शहाब-उद्दीन और उसके सहायक मराठे अवध को जीतने का विचार कर रहे थे कि अवध के सूबेदार शुजा-उद्दौला ने रुहेलों से सन्धि करके उनके सरदार नजीब-उद्दौला को अपने साथ गांठ लिया और अहमदशाह अब्दाली को भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए बुला भेजा। सन् १७५९ में अहमदशाह अब्दाली ने फिर पाँचवी बार भारत पर आक्रमण किया। परंतु उसके दिल्ली पहुँचने के पहले ही शहाब-उद्दीन बादशाह आलमगीर दूसरे की हत्या करके भाग गया। शहाब-उद्दीन गुप्त रूप से शुजा-उद्दौला, नजीब-उद्दौला और अहमदशाह अब्दाली से मिला हुआ था और इसके बाद किसी ने उसका नाम भी नहीं सुना। वह सदैव के लिए भारत के राजनीतिक रंगमंच से छिप गया। सन् १७६१ में, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, मराठों की भारी हार हुई। इस युद्ध के बाद शुजा-उद्दौला मंत्री हुआ और नजीब-उद्दौला सेनापति।

घलुघारा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद अहमदशाह अब्दाली ने उचित समझ कर एक हिंदू काबुली मल को लाहौर का हाकिम बना दिया। परंतु सन् १७६५ में सिक्खों ने काबुली मल को भी निकाल दिया। अब लाहौर पर सिक्ख सरदारों का अधिकार हो गया और लाहौर प्रांत सदा के लिए अब्दाली के हाथ से निकल गया। चाहे सन् १७६७ में अहमद शाह अब्दाली ने फिर एक बार भारत पर आक्रमण किया परंतु उसका मनोरथ सफल न हो सका। अहमदशाह अब्दाली सन् १७७३ में मर गया और उसके बाद तैमूरशाह के हाथ गद्दी लगी।

पंजाब सिक्ख-राज्य के आरंभ के पहले

फ़र्रुख़सियर के समय में लाहौर प्रांत के सिक्खों ने विद्रोह कर दिया था। उस समय लाहौर और मुलतान का सूबेदार अब्दुल समद खां बनाया गया था। उसने सिक्खों के सरदार बंदा बैरागी को गिरफ्तार करके उसे मरवा दिया। इस अवसर पर बंदा बैरागी के दूसरे सिक्ख साथी भी अधिक संख्या में मारे गए। इसके बाद जब तक वह लाहौर और मुलतान का सूबेदार रहा, पंजाब के सिक्ख चुप रहे। परंतु सन् १७२६ में उसका लड़का जब ज़करिया खां पंजाब का सूबेदार बना, तब सिक्खों ने फिर विद्रोह कर दिया। ज़करिया खां ने १७ वर्ष, अर्थात् सन् १७४३ तक, राज्य किया। इस सूबेदार का शासन-काल पंजाब में बहुत प्रसिद्ध है। अपने पिता अब्दुल समद की भांति यह भी बहुत कठोर शासक था। उसका शासन-काल हिंदुओं और विशेष कर सिक्खों के लिए संकट का समय था। सन् १७३४ में हिंदू बालक हकीकतराय को मुसलमान लड़कों को गाली देने के साधारण-से दोष पर क़त्ल करा दिया गया। सन् १७३८ में एक सिक्ख संत भाई मनीसिंह को भी मार दिया गया। इस शासक के समय में सिक्खों को ढूंढ़-ढूंढ़ कर उनकी हत्या की जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रांत के हिंदू और सिक्ख मुसलमान शासन के विरुद्ध संगठित हो

गए। इन्हीं दिनों में जब सीमांत पर कोई सेना न थी और पठान सीमांत के दर्रों की रक्षा के लिए तैयार न थे, तब नादिरशाह ने सन् १७३६ में भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया। इन परिस्थितियों में नवाब ज़करिया खां भला क्या सामना करता? विवश होकर उसे नादिरशाह की सेना को रास्ता देना पड़ा।

यह्या खां और शहीदगंज

सन् १७४३ में ज़करिया खाँ मर गया। उसके दो लड़के थे। एक का नाम यह्या खां और दूसरे का नाम हिदायत खां था। ज़करिया खां के मरने के बाद यह्या खां गद्दी पर बैठा और हिदायत खाँ मुलतान का सूबेदार बना। उसके शासन-काल में सिक्खों

हिदायत खां व शाह नवाज़

छोटे भाई हिदायत खां सूबेदार मुलतान ने, जो बाद में शाह नवाज़ के उपनाम से प्रसिद्ध हुआ, विद्रोह कर दिया। उसने अपने भाई यहया खां और उसके मंत्री दीवान लखपतराय दोनों को लाहौर से बाहर निकाल दिया और लाहौर की सूबेदारी पर स्वयं अधिकार कर लिया। इसके बाद इस डर से कि कहीं दिल्ली दरबार मुझे तंग न करे, उसने सन् १७४७ में अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुला भेजा। परंतु जब अहमदशाह अब्दाली पंजाब में आ ही पहुँचा, तब शाहनवाज़ ने उसका सामना किया और हार कर क्षमा माँगी। फिर जब अहमदशाह अब्दाली आगे बढ़ा, तब सरहंद के पास मंत्री कमरुद्दीन के लड़के मईनुद्दीन से उसकी लड़ाई हुई। मईनुद्दीन ने उसको हरा दिया और अहमदशाह को वापस क़ंधार लौटना पड़ा। इस पर दिल्ली दरबार ने मईनुद्दीन को लाहौर और मुलतान का सूबेदार बना दिया।

मईनुद्दीन व मीर मन्नू

मईनुद्दीन, जो बाद में मीर मन्नू के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जब पंजाब का सूबेदार बना, तब पंजाब की दशा बड़ी शोचनीय थी। उस समय सिक्खों ने देश में खूब लूट-मार मचा रखी थी। अमृतसर के पास उन्होंने एक क़िला भी बना लिया था और यहां से सिक्ख जत्थे सारे देश में लूटमार के लिए जाते थे। मीर मन्नू ने सूबेदार बनते ही पहले सिक्खों को दबाने का निश्चय किया। उसने अमृतसर के पास राम रौनी के क़िले को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और फिर उन सब इलाक़ों में, जहां सिक्खों का ज़ोर था, सिपाही नियुक्त करके उन्हें आदेश दे दिया कि जहां कहीं भी कोई सिक्ख मिल जाय, उसका सिर और दाढ़ी तुरन्त मूँड ली जाय। सिक्ख भाग कर जंगलों और पहाड़ों में छिप गये। सैकड़ों सिक्ख प्रतिदिन बंदी करके लाहौर लाये जाते थे और लाहौर के पास शहीदगंज में क़त्ल किए जाते थे। मीर मन्नू ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह सिक्खों को संसार से मिटा कर

दम लेगा, परंतु अभी इस घोर प्रतिज्ञा को कार्यरूप में लाने की तैयारियां हो ही रही थीं कि अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर दूसरा आक्रमण कर दिया। मीर मन्नू ने दिल्ली में सहायता मांगी, परंतु वहाँ से सहायता न आनी थी, न आई। मीर मन्नू को वज़ीराबाद के पास सोधरां पर भारी हार हुई और अंत में उसने पंजाब के उत्तरीय चार परगनों का लगान अहमदशाह को देकर अपना पीछा छुड़ाया। परंतु ज्यों ही मीर मन्नू अहमदशाह अब्दाली के सामने के लिए लाहौर से उत्तर की ओर बढ़ा था, सिक्ख पहाड़ों से निकल आए थे। मीर मन्नू सिक्खों पर जितनी ही सख़्ती करता था, उतना ही उनका साहस बढ़ता था। इन दिनों सिक्खों में यह कहावत प्रसिद्ध हो गई थी:—

मीर मन्नू असां दी दातरी, असां मीर मन्नू दे सोए।
ज्यों ज्यों मन्नू वढदा, असीं दून सवाए होए॥

मीर मन्नू की अनुपस्थिति का सिक्खों ने पूरा लाभ उठाया और जब वह अहमदशाह अब्दाली का सामना कर रहा था, तब सिक्खों ने नगर पर आक्रमण कर दिया और फ़सील के बाहर का सारा नगर लूट कर जला दिया। जब मीर मन्नू अब्दाली से निपट कर वापस लौटा, तब उसे राजधानी की ऐसी अवस्था देख कर बड़ा दुःख हुआ और वह क्रोध में पागल हो उठा। उसने सिक्खों के साथ और भी सख़्ती शुरू कर दी। हज़ारों की संख्या में सिक्ख मार डाले गए परंतु उजड़ा और बरबाद हुआ लाहौर फिर न संभला। हाँ, मीर मन्नू ने सिक्खों को फिर पहाड़ों और जंगलों में अपने आपको छिपाने के लिए विवश करके प्रांत में शांति स्थापित कर दी।

अब्दाली — की आग से जल उठा। उसने मीर मन्नू की ताक़त कम करने के विचार से मुलतान की सूबेदारी उससे छीन कर शाह नवाज़ को दे दी। यह देख मीर मन्नू को बहुत क्रोध आया और उसने अपने दीवान कूड़ामल को शाहनवाज़ से लड़ने के लिए भेजा। इस लड़ाई में शाहनवाज़ मारा गया। उसके बाद मीर मन्नू ने कूड़ामल को मुलतान का सूबेदार बना दिया। मीर मन्नू का भाग्य-सूर्य इस समय पूरे तेज़ से चमक रहा था। उसका शत्रु शाह नवाज़ मारा गया था। दिल्ली का शासन इस समय कमज़ोर था। अहमदशाह अब्दाली को भी वह एक बार हरा चुका था। अब उसे किस बात की चिंता थी? उसे किसी से भी डर नहीं था। इसलिए उसने अपने आपको स्वतंत्र शासक घोषित करके अब्दाली को चार परगनों का लगान देना भी बंद कर दिया। अंत में सन १७५२ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर तीसरा आक्रमण किया। राजा कूड़ामल लड़ाई में मारा गया और मीर मन्नू हार गया। सन १७५२ में अहमदशाह अब्दाली ने लाहौर और मुलतान के प्रांतों को अपने साम्राज्य में मिला लिया, परंतु अपनी तरफ़ से मीर मन्नू ही को सूबेदार रहने दिया।

मीर मन्नू की मृत्यु — अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय सिक्खों ने देश में फिर लूट-मार शुरू कर दी थी और अमृतसर के पूर्व में सब इलाक़े पर फिर अधिकार जमा लिया था। इसलिए अब्दाली के चले जाने के बाद भी मीर मन्नू ने फिर सिक्खों को दबाने की ठानी। उसने जालंधर के फ़ौजदार अदीना बेग को आज्ञा दी कि वह सिक्खों को उचित दंड दे। परंतु अदीना बेग वास्तव में सिक्खों से मिला हुआ था, और यद्यपि उसने माखोवाल पर सिक्खों को हराया, परंतु उसने उनसे यह समझौता भी कर लिया कि उनसे लगान कम लिया जायगा और यह भी मान लिया कि उन्हें दूसरे ज़मींदारों से

मिसल का इलाक़ा था। गुरदासपुर और अमृतसर के कुछ इलाक़ों में रामगढ़िया रियासत स्थापित हो गई थी। रावी नदी के किनारे डालीवाल मिसल थी। सतलुज और व्यास के उत्तरीय किनारों और जालंधर के कुछ इलाक़े पर सिंहपुरिया मिसल का राज्य था। चूनियां, शर्कपुर और दोपालपुर की वर्तमान तहसीलों के अधिकांश भाग में मिसल नकायन मौजूद थी।

घमंडचंद कटोच

परंतु काँगड़े का बहुत-सा पहाड़ी इलाक़ा राजा घमंडचंद कटोच के अधीन था। जम्मू का इलाक़ा रणजीतदेव के राज्य में शामिल था। महाराजा रणजीतसिंह के उन्नति पाते ही सब रियासतें हार कर पंजाब के सिक्ख साम्राज्य में मिल गईं।

सरदार बना। रणजीतसिंह अत्यंत योग्य और बुद्धिमान शासक सिद्ध हुआ और सब सरदारों में प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाने लगा। सन् १७९९ में काबुल के शासक शाहज़मान ने पंजाब पर आक्रमण किया। वह लाहौर तक आया, परंतु पश्चिम से ईरानियों द्वारा अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण हो जाने के कारण उसे वापस जाना पड़ा। जाते समय उसकी तोपें जेहलम नदी में डूब गईं। रणजीतसिंह ने उन्हें निकलवा कर शाहज़मान के पास भिजवा दिया और उसने प्रसन्न होकर रणजीतसिंह को लाहौर का शासक बना दिया। परंतु उस समय लाहौर पर भंगियों का अधिकार था। रणजीतसिंह ने सन १७९९ में भंगियों को लाहौर से निकाल कर नगर पर स्वयं अधिकार कर लिया। सन् १८०२ में उसने कपूरथला रियासत के सरदार फ़तहसिंह आहलूवालिया की सहायता से अमृतसर जीत लिया और कन्हैया मिसल के सिक्खों की सहायता से उसने भंगियों के इलाक़े अपने अधिकार में कर लिये। सन १८०९ में क़सूर के पठानों ने उसकी अधीनता मान ली। अब सन् १८०५ में मध्य-पंजाब में केवल तीन ही राज्य रह गये। कांगड़े के पहाड़ी इलाक़े में संसार चंद कटोच छोटे-छोटे पहाड़ी राजाओं को जीत कर अपने साम्राज्य को फैला रहा था। जालंधर, होशियारपुर और लुधियाने के इलाक़ों में फ़तहसिंह आहलूवालिया अपने साम्राज्य को बढ़ा रहा था और लाहौर की वर्तमान कमिश्नरी और गुजरात ज़िले के इलाक़े में रणजीतसिंह का राज्य स्थापित हो चुका था। उस समय काश्मीर, रावलपिंडी, शाहपुर, खुशाब, झंग और मुलतान इत्यादि के इलाक़े काबुल साम्राज्य के अंतर्गत थे। परंतु जब तैमूरशाह के मरने के बाद उसके लड़कों में गद्दी के लिए झगड़ा हुआ, तब इन अधीन इलाक़ों के शासकों ने भी विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। रणजीतसिंह ने इसे अच्छा अवसर समझ कर सन् १८०५ के अंत में झंग, साहीवाल और मुलतान पर चढ़ाई कर दी। स्थानीय शासकों ने भेंट इत्यादि देकर

उसने अपना पीछा छुड़ाया, परंतु रणजीतसिंह को निश्चय हो गया कि वह शीघ्र ही इन इलाक़ों को अपने साम्राज्य में मिला लेगा। सन् १८०५ के अंत में उसने फिर पश्चिम में काबुल के अधीन इलाक़ों पर चढ़ाई की, परंतु दूसरी तरफ़ से समाचार मिला कि जसवंत राव होलकर अंग्रेज़ों से हार कर पंजाब की तरफ़ भाग आया है और अंग्रेज़ जनरल लार्ड लेक उसका पीछा कर रहा है। रणजीतसिंह और फ़तहसिंह तत्काल वापस आए। होलकर सिक्खों की सहायता चाहता था, फिर अंग्रेज़ों के विरुद्ध मराठा सरदार को सहायता देना भी भय से रहित न था। अंत को अमृतसर में सारे सिक्ख सरदारों का गुरमता बुलाया गया। सब सरदार इकट्ठे हुए, परंतु इस बीच में भारत संबंधी अंग्रेज़ों की नीति में परिवर्तन हो चुका था। अंग्रेज़ों ने होलकर को बहुत नरम शर्तें दे दीं। जसवंतराव होलकर मालवा को वापस लौट गया और रणजीतसिंह तथा फ़तहसिंह आहलूवालिया ने भी प्रतिज्ञा की कि वे अंग्रेज़ों के विरुद्ध मराठों को सहायता न देंगे।

संगठित होकर अंग्रेज़ों को भारतवर्ष से निकालने की सोच रहे थे। लार्ड मिंटो गवर्नर जनरल ने सर चार्लस मेटकाफ़ को इसलिए पंजाब में भेजा कि रणजीतसिंह सरहंद इलाक़े की रियासतों में हस्तक्षेप न करे। अंत में सन् १८०९ में अंग्रेज़ी शासन और रणजीतसिंह में संधि हो गई। सरहंद की रियासतें अंग्रेज़ों और रणजीतसिंह के साम्राज्यों में सीमा मानी गई। इस संधि के अनुसार संसार चंद कटौच और फ़तहसिंह आहलूवालिया के इलाक़े महाराजा रणजीतसिंह के अधीन समझे गये। इस संधि-पत्र के बाद पंजाब में एक ही शक्ति रह गई और वह रणजीतसिंह की थी।

जम्मू आदि की विजय

सन् १८०९ के संधि-पत्र के बाद रणजीतसिंह को अपनी दक्षिणी सीमा की ओर से कोई शंका न रही और अब उसने काबुल के अधीन इलाक़ों को जीतने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। परंतु इस काम को हाथ में लेने से पहले उसने पहाड़ी इलाक़े की छोटी-छोटी रियासतों को अपने साम्राज्य में मिला लेना उचित समझा। सन् १८०९ में जम्मू पर रणजीतसिंह ने विजय पा ली और जम्मू का इलाक़ा रणजीतसिंह के साम्राज्य में मिल गया। सन् १८१० में रणजीतसिंह ने कांगड़े की पहाड़ियों से गोरखों को निकाल दिया, और स्वयं कांगड़े पर अधिकार जमा लिया। सन् १८१५ में उसने जम्मू और काश्मीर के बीच की राजौड़ी, भिंबर इत्यादि छोटी छोटी-रियासतों को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

राजा गुलाबसिंह

जम्मू के राजा ब्रजराजदेव के चचा का एक लड़का ज़ोरावरसिंह था। उसके पुत्र किशोरसिंह के तीन बेटे थे, गुलाबसिंह, ध्यानसिंह और सुचेतसिंह। इन तीनों भाइयों ने सन् १८११ में रणजीतसिंह के दरबार में नौकरी कर ली। महाराजा रणजीतसिंह इन तीनों भाइयों की

मुच योग्य व्यक्ति था। खड़कसिंह केवल १४, १५ महीने जीवित रहा। इस बीच में राज्य का सब काम नौनिहालसिंह ही करता रहा। इसके शासन-काल में राजा गुलाबसिंह के सेनापति ज़ोरावरसिंह ने लद्दाख, सकर्दू और गिलगित के इलाक़े जीत लिए। तिब्बत में सिंध नदी के निकास और झील मानसरोवर पर अधिकार जमा लिया और हिमालय के पार नैपाल की सीमा के साथ अपनी सीमा ला मिलाई। परंतु दिसंबर सन् १८४१ में जब सरदी ज़ोरों पर थी। तिब्बतियों ने डोगरों पर आक्रमण कर दिया। डोगरों को इस सरद मौसम में लड़ने का अभ्यास न था, बहुत से मारे गए और कुछ बच कर अलमोड़ा और नैनीताल की पहाड़ियों के रास्ते हिंदुस्तान को वापस हुए। अंत में डोगरों को तिब्बत का इलाक़ा खाली करना पड़ा।

पंजाब में सिक्ख साम्राज्य का विनाश

खड़कसिंह नवंबर सन् १८४० में मर गया और नौनिहालसिंह भी उसी दिन हज़ूरी बाग़ के दरवाज़े की महराब गिरने से घायल होकर मर गया। कुछ दिन बाद सिक्ख सेना की सहायता से शेरसिंह सिंहासन पर बैठा। परंतु उस समय सेना इतनी शक्तिशाली हो गई थी कि वह शासन की भी परवाह नहीं करती थी। सैनिकों ने स्वयं अपने पंच बना रखे थे और वे उन्हीं पंचों के आदेशों का पालन करते थे। दरबार में भी दो दल बन गए थे। संध्या वाले सरदारों ने, जो महाराजा रणजीतसिंह के पूर्वजों में से थे और शेरसिंह तथा ध्यानसिंह दोनों के विरोधी थे, अंत में अवसर पा कर उन दोनों को मरवा दिया। परंतु सिक्ख सेना ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह के हाथ में थी। परिणाम यह हुआ कि संध्या वाले सरदार मरवा दिए गए। कुँअर दिलीपसिंह, जो महाराजा रणजीतसिंह का सब से छोटा पुत्र था और जिसकी आयु केवल पांच वर्ष की थी, राजा बनाया गया। हीरासिंह उसका मंत्री बना। परंतु हीरासिंह पर एक ब्राह्मण जल्ला पंडित का प्रभाव

था। कुछ ही दिनों में सिक्ख सेना उसके विरुद्ध हो गई। अंत में हीरासिंह और जल्ला पंडित दोनों की हत्या कर दी गई और रानी जिंदा का भाई जवाहरसिंह मंत्री बना। परंतु सिक्ख सेना ने सन् १८४५ में उसे भी मरवा दिया। अब कोई भी मंत्री पद स्वीकार करने को तैयार न था। दरबार सिक्ख सेना से बहुत डरता था। इसलिए रानी जिंदा और उनके दूसरे सलाहकारों ने सिक्ख सेना को इस बात पर तैयार किया कि वह अंग्रेज़ी इलाक़े पर आक्रमण करे। इन दिनों अंग्रेज़ भी सरहंद और दिल्ली के इलाक़ों में सेना बढ़ा रहे थे। सिक्ख अंग्रेज़ों से सिंध जीत लेने पर नाराज़ थे। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ उस समय सतलुज में बहुत-सी नौकाएं इकट्ठी कर रहे थे और सिक्ख यह समझते थे कि वे उनके विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हैं। तब सिक्ख सेना ने यही अच्छा समझा कि वह ही पहले अंग्रेज़ी सेना पर आक्रमण करे। परंतु लालसिंह और तेजसिंह सिक्ख सेना को नष्ट करना चाहते थे और वे ही उस समय सेना के नायक थे। चाहे सिक्ख सेना ने बड़ी वीरता से युद्ध किया तब भी, क्योंकि इस सेना के नायक ही अंग्रेज़ों को जीत चाहते थे, सिक्खों की सारी सेना नष्ट हो गई। अंत में मार्च सन् १८४६ में रणजीतसिंह का साम्राज्य दो भागों में बँट गया। जम्मू, काश्मीर, लदाख, सकर्दू और गिलगित महाराज गुलाबसिंह को दिए गए और शेष पंजाब में दिलीपसिंह को अंग्रेज़ साम्राज्य के अधीन राजा माना गया। परंतु यह अधीन राज्य भी सन् १८४९ में समाप्त हुआ और सारा पंजाब अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिल गया।

काबुल और क़ंधार में नादिरशाह का उदय

हम पहले लिख चुके हैं कि मुग़लों के समय में काबुल प्रांत के अंतर्गत काश्मीर, स्वात, पेशावर, दोनों डेरे, काबुल, ग़ज़नी, और क्वेटा के इलाक़े थे। परंतु क़ंधार और क्वेटा का इलाक़ा शाहजहान के शासन-काल में ईरानियों ने जीत लिया था। औरंगज़ेब के मरने के कुछ समय बाद कंधार

गिलज़ई और अब्दाली पठानों ने ईरानी राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर या और सन् १७१० में कंधार का गिलज़ई सरदार मीर वैस स्वतंत्र । गया । सन् १७१५ में अब्दालियों ने हिरात और खुरासान के इलाक़ों र अधिकार जमा लिया । सन् १७२२ में मीर वैस के बेटे मीर महमूद ईरानी सेनाओं को बुरी तरह हराया और शाह हुसैन को गद्दी से तार कर स्वयं ईरान का बादशाह बन बैठा । जब सन् १७२५ में मीर हमूद मर गया, तब उसके चचा का लड़का मीर अशरफ़ ईरान का ादशाह बना । परंतु सन् १७३० में नादिरशाह ने उसे लड़ाई में हरा र पुराने राज-वंश के एक कुंवर को ईरान की गद्दी पर बिठा दिया । सके बाद सन १७३६ में नादिर शाह स्वयं ईरान का बादशाह न बैठा ।

नादिरशाह और कंधार

जब नादिर शाह ने ईरान का शासन-प्रबंध अपने हाथ में लिया, तब मीर महमूद का छोटा भाई मीर हुसैन कंधार का शासक था । नादिरशाह ने ईरान के सिंहासन पर बैठते ही ईरान साम्राज्य के अंतर्गत सब सूबों को आज्ञा दी कि असफ़हान में उपस्थित होकर ए बादशाह के प्रति राजभक्ति की सौगंध लें । परंतु पठान स्वतंत्र हो चुके थे, मीर हुसैन ने नादिरशाह की अधीनता मानने से इनकार कर देया । नादिर शाह सेना लेकर कंधार पर चढ़ आया । मीर हुसैन ने ी वीरता के साथ सामना किया । नादिरशाह एक वर्ष तक कंधार पर ेरा डाले पड़ा रहा और तब कहीं नगर पर अधिकार जमा सका । परंतु नादिर शाह मीर हुसैन की वीरता पर इतना मुग्ध हुआ कि उसने मीर हुसैन को ही अपनी तरफ़ से कंधार का सूबेदार बना दिया ।

जिन दिनों कंधार का घेरा डाला गया था, उन्हीं दिनों में नादिर शाह के पास दिल्ली के कई एक अधिकारियों

नादिरशाह का भारत की ओर से पत्र आये थे । उनमें उसे भारतवर्ष

पर आक्रमण

पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया गया था। अतएव क़ंधार जीतने के बाद नादिर शाह काबुल की ओर बढ़ा। यह बात हम लिख आए हैं कि उस समय मुग़लों ने सीमांत से सेना हटा ली थी और दर्रों के पठानों का भत्ता भी दिल्ली दरबार ने बंद कर दिया था। नादिरशाह ने अब पठानों को अपनी ओर से भत्ता देना आरंभ कर दिया और उनको अपनी सेना में भी भरती कर लिया। पठान अब नादिरशाह के सहायक बन गये और उनकी सहायता से उसने काबुल पर अधिकार जमा लिया। मुग़ल सूबेदार नासिरखां काबुल से पेशावर हट आया, परंतु यहाँ भी उसने नादिरशाह से हार खाई और अंत में उसको नादिरशाह की अधीनता माननी पड़ी। नादिरशाह ने नासिर खाँ को अपनी ओर से क़ाबुल का सूबेदार बना दिया और इसके बाद उसने सिंध नदी को पार कर लाहौर पर आक्रमण कर दिया। जब दिल्ली लूट कर नादिर-शाह वापस आया, तब पठानों ने रास्ते में रुकावट डाली। नादिरशाह ने भारत की लूट में से दस लाख रुपया पठानों को दिया और बाक़ी लूट का माल लेकर काबुल और क़ंधार होता हुआ खुरासान पहुँचा। नादिरशाह ने अब मशहद को अपनी राजधानी बनाया, परंतु सन् १७४७ में कुछ ईरानी अधिकारियों ने उसे मार डाला।

सदोजई वंश

नादिरशाह की हत्या के समय एक व्यक्ति अहमद खाँ नादिरशाह की सेना में किसी पद पर नियुक्त था। उस समय वह केवल २३ वर्ष का नव-युवक था। अहमद खाँ का संबंध अब्दालियों के एक अत्यंत प्रसिद्ध वंश सदोजई से था। वह स्वयं एक वीर, साहसी और दूरदर्शी युवक था। नादिरशाह की हत्या के बाद पठान सेना मशहद से वापस हुई। क़ंधार पहुँच कर पठानों ने फिर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और यहां पर सब पठान सरदारों ने मशहद खाँ को अपना बादशाह चुना।

अहमद खाँ ने गद्दी पर बैठते ही पठान जाति को एक संगठित तथा सुव्यवस्थित जाति बनाने की ओर ध्यान देना आरंभ किया। उसने अपने राज्य के संबंध में कुछ नियम बनाए और निश्चय किया कि (१) पठानों का हर क़बीला और संप्रदाय अपने अंतरीय मामलों में अपने-अपने मलिक के अधीन स्वतंत्र होगा। (२) साम्राज्य-संबंधी सब महत्त्वपूर्ण बातों का निर्णय मलिकों की सलाह से ही होगा। (३) युद्ध के समय हर मलिक का यह कर्तव्य होगा कि वह सम्राट् की सहायता के लिए सेना का एक दस्ता भेजे और इस सेवा के बदले मलिकों को एक खास भत्ता मिलेगा। परंतु केंद्रीय शासन में सब पद केवल अब्दालियों के लिए ही सुरक्षित रखे गए। इस नीति से अहमद खाँ ने अपना राज्य एक राष्ट्रीय राज्य में बदल दिया और सारी पठान जाति ने उसे अपना राष्ट्रपति मान लिया। बादशाह बनते ही अहमद शाह ने यह चाहा कि सारी पठान जाति एक ही बादशाह के अधीन हो जाय, परंतु काबुल और ग़ज़नी अभी तक नासिर खां के अधीन थे। अहमद शाह ने नासिर खाँ को आदेश दिया कि वह उसकी अधीनता मान ले। परंतु नासिर खाँ ने काबुल में मुग़ल साम्राज्य की अधीनता की घोषणा कर दी और अहमद शाह का सामना करने के लिए तैयार हुआ। दिल्ली से तो उसे भला क्या सहायता मिलती, उसने स्थानीय पठानों को ही अपनी सेना में भरती करना आरंभ कर दिया, परंतु उस समय पठानों में राष्ट्रीय भाव खड़ा हुआ था। उन्होंने अपने सजातीय बादशाह के विरुद्ध लड़ने से इनकार कर दिया और अहमद शाह ने किसी कठिनाई के बिना ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया। नासिर खां पीछे हट कर पेशावर आ ठहरा, परंतु यहां भी वह हारा। नासिर खाँ अब सिंध नदी को पार कर के पंजाब में भाग आया, परंतु अहमद शाह ने भी पंजाब पर आठ आक्रमण किए थे। सन् १७५२ में उसने लाहौर और मुलतान के प्रांतों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। सन् १७५६ में काश्मीर और

और फ़ौजदारी सरहद का इलाक़ा भी अब्दाली साम्राज्य में मिल गया और पश्चिम की ओर अहमद शाह ने ख़ुरासान जीत लिया।

बारक़जई वंश

जब सन् १८१८ में मंत्री फ़तह ख़ां मारा गया और अफ़ग़ानिस्तान में सदोज़ई पठानों के साम्राज्य का अंत हुआ, तब काबुल मुहम्मद अज़ीम के पास था। ग़ज़नी पर दोस्त मुहम्मद ख़ां का अधिकार था। पुरदिल ख़ां के हिस्से में क़ंधार आया था। जब्बार ख़ां काश्मीर पर राज्य कर रहा था और यार मुहम्मद ख़ां पेशावर पर। आरंभ में तो इन बारकज़ई भाइयों ने सदोज़ई राज-वंश ही में से किसी को बादशाह बनाना चाहा, परंतु वास्तव में इस वंश में अब कोई ऐसा योग्य व्यक्ति न था जो बादशाह बन सकता। अहमदशाह अब्दाली का साम्राज्य अब कई टुकड़ों में बंट गया था। ख़ुरासान तो पहले ही साम्राज्य से निकल चुका था। अब हिरात, बलख़ और बदख़शां भी स्वतंत्र हो गए। काश्मीर, रावलपिंडी, दोनों डेरे और मुलतान महाराजा रणजीतसिंह ने जीत लिए। बाक़ी इलाक़े में बारकज़ई भाइयों ने अपनी अलग रियासतें बना लीं। सन् १८२३ में जब काबुल का शासक मुहम्मद अज़ीम मर गया, तब दोस्त मुहम्मद ख़ां ने काबुल पर अधिकार जमा लिया और थोड़ी ही देर बाद उसने जलालाबाद के इलाक़े को भी जीत लिया। सन् १८३४ में शाह शुजा क़ंधार पर चढ़ दौड़ा, क़ंधार वालों ने दोस्त मुहम्मद ख़ाँ से सहायता माँगी। दोस्त मुहम्मद तत्काल सेना लेकर क़ंधार की ओर बढ़ा। शाहशुजा की भारी हार हुई। अब क़ंधार भी एक प्रकार से दोस्त मुहम्मद के अधीन हो गया और वह सारे पूर्वीय अफ़ग़ानिस्तान का स्वामी बन गया। सन् १८३५ में वह अमीर-उल-मोमनीन का नाम रख कर काबुल का बादशाह बन गया। उसने अमीर बनते ही सब प्रांतों में अपने लड़कों को सूबेदार बना कर भेज दिया। इसके बाद उसने सेना बढ़ानी शुरू की और महाराजा रणजीतसिंह से पेशावर का इलाक़ा

वापस ले लेने की कोशिश करने लगा। सन् १८३६ में ईरानी तो अफ़ग़ानिस्तान से हिरात वापस लेने का यत्न कर रहे थे और दोस्त मुहम्मद ख़ाँ रणजीतसिंह से पेशावर लेने की चिंता में था। सन् १८३७ में दोस्त मुहम्मद ख़ाँ ने पेशावर पर आक्रमण किया, परंतु सफल न हुआ। उसने अंग्रेज़ों से सहायता माँगी, परंतु उन्होंने सहायता देने से इनकार कर दिया। अंत में उसने यह सोचा कि ईरानियों और रूसियों से मिल कर पेशावर वापस लिया जाय, परंतु इस पर अंग्रेज़ों से उसका युद्ध छिड़ गया। अगले किसी अध्याय में इस युद्ध का विस्तार-पूर्वक विवरण दिया जायगा। अंग्रेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान जीत लिया, परंतु अब की बार यही निर्णय हुआ कि दोस्त मुहम्मद ख़ाँ ही काबुल का बादशाह रहे और अंग्रेज़ इस देश के आंतरीय मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। अंग्रेज़ों की लड़ाई से छुटकारा पाकर दोस्त मुहम्मद ख़ाँ ने हिंदूकुश पर्वत को पार करके बलख़ और बदख़शाँ जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिए, परंतु हिरात अभी तक भी उसके साम्राज्य की सीमा के बाहर ही रहा। ईरानी सदा इसी कोशिश में लगे रहते थे कि किसी प्रकार हिरात पर स्वयं अधिकार जमा लें और कंधार को अपने साम्राज्य में मिला लें। अंत में दोस्त-मुहम्मद ख़ाँ को विवश हो कर अंग्रेज़ों से सहायता माँगनी पड़ी। सन् १८५४ में एक संधि-पत्र तैयार किया गया, जिसके द्वारा अंग्रेज़ों और अफ़ग़ानों में मित्रता का संबंध स्थापित हो गया। सन् १८५६ में ईरानियों ने हिरात जीत लिया, परंतु अंग्रेज़ों ने मित्रता के नाते ईरानियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ईरानियों की हार हुई और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे फिर कभी हिरात लेने का प्रयास न करेंगे। इस युद्ध में भारत की अंग्रेज़ी सरकार और अफ़ग़ानिस्तान में एक और संधि हुई, जिसके द्वारा अंग्रेज़ों ने अमीर दोस्त मुहम्मद ख़ाँ को युद्ध के ख़र्च के लिए एक लाख रुपया मासिक स्वीकार किया और अफ़ग़ानिस्तान में अंग्रेज़ अफ़सर, इस

तात्पर्य से नियुक्त किया कि वह दोस्त मुहम्मद खाँ की सेना तथा पर-राष्ट्र-संबंधी मामल की देख-भाल करता रहे। इस लडाई के बाद हिरात दोस्त मुहम्मद खाँ के भतीजे अहमद खाँ को दिया गया। परंतु इस युद्ध के बाद भी ईरानी गुप्त रूप से हिरात में षड्यंत्र कर रहे थे, इसलिए सन् १८६३ में दोस्त मुहम्मद खां ने फिर हिरात पर चढ़ाई कर दी और इस इलाक़े को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। परंतु इस घटना के कुछ दिन बाद ही दोस्त मुहम्मद खां मर गया और उसका लड़का शेरअली अमीर अफ़ग़ानिस्तान बना।

मुलतान और सिंध

मुहम्मद शाह बादशाह के समय में मुलतान का प्रांत लाहौर के सूबेदार अब्दुल समद खाँ के अधीन था। उसके मरने के बाद जब ज़करिया खाँ लाहौर का सूबेदार बना, तब उसका लड़का शाह नवाज़ खाँ मुलतान का सूबेदार बना। उस समय मुलतान प्रांत में मुलतान की वर्तमान कमिश्नरी, रियासत बहावलपुर, ज़िला सक्खर, शिकारपुर और सिबी के इलाक़े शामिल थे। जब सन् १७३९ में मुलतान प्रांत में से सिंध पार का सारा इलाक़ा नादिर शाह के साम्राज्य में मिल गया, तब सादिक़ मुहम्मद खाँ, जिसको नवाब मुलतान की ओर से सतलज के दक्षिण में कुछ इलाक़े की ज़मींदरी मिली हुई थी, नवाब माना गया और नादिर शाह ने उसको अपनी ज़मींदरी के अतिरिक्त सक्खर और शिकारपुर का इलाक़ा भी दे दिया।

कल्होड़ा वंश

उस समय सक्खर का फ़ौजदार नूर मुहम्मद कल्होड़ा था और सक्खर और शिकारपुर का इलाक़ा उसके अधीन था। जैसा अभी बताया गया है सक्खर और शिकारपुर का इलाक़ा तो उससे लेकर नवाब सादिक़ मुहम्मद खाँ को दे दिया गया, परंतु नादिरशाह ने नूर मुहम्मद को अपनी ओर से दक्षिण सिंध का सूबेदार बना दिया। पश्चिम में एक बल्ली सरदार

मीर मुहम्मद ने एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर रखा था। उसने भी नादिरशाह की अधीनता मान ली। उसको सिवी का इलाक़ा दिया गया। परंतु जब इस प्रकार साम्राज्य का प्रबंध करके नादिर शाह क़ंधार को वापस चला गया और सन् १७४७ में वह मशहद में क़त्ल कर दिया गया, तब सिंध के सूबेदार नूर मुहम्मद खां ने शिकारपुर पर आक्रमण कर दिया। सादिक़ मुहम्मद खां युद्ध में मारा गया। सक्खर और शिकारपुर फिर नूर मुहम्मद खां के अधिकार में आ गए। सादिक़ मुहम्मद खां के लड़के बहावल खां ने भाग कर अपनी ज़मींदारी में आश्रय लिया। इस इलाक़े में सन् १७४८ में उसने नगर बहावलपुर की नींव रखी। बहावल खां ही वर्तमान बहावलपुर रियासत का संस्थापक है और नवाब बहावलपुर का पूर्वज है। सन् १७५२ में मुलतान के प्रांत का शेष भाग भी मुगल साम्राज्य से अलग हो कर अब्दाली साम्राज्य में मिल गया। सिंध में नूर मुहम्मद खां कल्होड़ा सन १७५४ में मर गया और उसके बाद उसके लड़के गुलाम शाह ने सारे दक्षिण सिंध पर अधिकार कर लिया। सन् १७६८ में उसने पुराने हिंदू नगर नीरों के खंडहरों पर वर्तमान हैदराबाद नगर की नींव रखी। सन् १७७२ में उसकी मृत्यु हुई, परंतु उसके बाद गद्दी के लिए उसके लड़कों में झगड़ा छिड़ गया। यह वंश १७८३ तक सिंध में राज्य करता रहा।

सिंध का तालपुर वंश

सन् १७८३ में सिंध में तालपुर सरदारों ने तीन रियासतें स्थापित की थीं। एक हैदराबाद, दूसरी मीरपुर खास और तीसरी खैरपुर। अंग्रेज़ों ने पहले-पहल एक व्यापारिक कोठी सन् १७५८ में ठट्टा में स्थापित की थी, परंतु सन् १७७५ में सरफ़राज़ खां कल्होड़ा के राज्य की सख़्तियों से तंग आकर उनको यह कोठी बंद करनी पड़ी थी। फिर जब फ़तह खां तालपुर ने सन् १७९५ में खान कलात से कराची छीन लिया था, तब यह बंदरगाह एक बड़ा व्यापारिक

मंडी थी। सन् १७६६ में अंग्रेज़ों ने भी यहां पर व्यापार आरंभ कर दिया। सन् १८०२ में फ़तहअली खां मर गया और उसके भाइयों ने शासन में कोई रुकावट न पड़ने दी। सन् १८०३ में शाह शुजा ने सिंध पर आक्रमण कर दिया और तालपुर सरदारों ने दस लाख रुपया भेंट करके अपना पीछा छुड़ाया। सन् १८०८ में जब अंग्रेज़ों ने रणजीतसिंह, शाह शुजा और शाह ईरान से फ्रांसीसियों के विरुद्ध संधि की थी, तब इसी प्रकार की एक संधि सिंध के सरदारों से भी हुई थी। सन् १८२० में सिंध के सरदारों ने यह माना था कि वे अपनी रियासत में किसी यूरोपियन को नौकर नहीं रखेंगे। सन् १८३२ में अंग्रेज़ों से एक संधि हुई जिसके द्वारा अंग्रेज़ों को सिंध में खुला व्यापार करने की आज्ञा मिल गई, परंतु अंग्रेज़ों ने यह प्रतिज्ञा की कि सिंध में से कोई सेना या सेना का सामान न ले जाया जायगा। इसी तरह की एक प्रतिज्ञा अंग्रेज़ों ने मीर खैरपुर से भी की।

सिंध पर अंग्रेज़ों का आधिपत्य

जब अफ़ग़ानिस्तान में मुहम्मद अज़ीम के मरने के बाद युद्ध छिड़ा हुआ था, तब खैरपुर और हैदराबाद के सरदारों ने मिल कर सन् १८२४ में शिकारपुर पर अधिकार जमा लिया और सन् १८२६ में रणजीतसिंह ने मिज़ारी बलोचों के इलाक़े पर आक्रमण करके रोझान ले लिया। सिंध के अमीर रणजीतसिंह से बहुत डरते थे। उन्होंने अंग्रेज़ों से सहायता माँगी। अंग्रेज़ सहायता करने को तैयार हो गए और सिंध की रियासतें सन् १८३७ में उनके अधीन हो गईं और अब आगे के लिए सिंध सिक्खों से सुरक्षित हो गया। अफ़ग़ानिस्तान के पहले युद्ध में अंग्रेज़ अपनी सेनाएँ सिंध के रास्ते क़ंधार ले गए। इस पर सिंधी सरदारों ने आपत्ति की। अंत में सन् १८३९ में सिंध के आगामी प्रबंध के लिए एक अंग्रेज़ी सेना रख दी और उसके ख़र्च के लिए ३ लाख रुपया वार्षिक हैदराबाद और मीरपुर खास की

रियासतों से लेना निश्चित हुआ। परंतु यह तीन लाख रुपया देने में अमीरों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। अंत में जब अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाई समाप्त हुई, तब इन झगड़ों का निर्णय करने के लिए सर चार्लस नेपियर को सन् १८४२ में सिंध भेजा गया। आगामी अध्याय में यह बताया जायगा कि किस प्रकार १८४३ में सिंध अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला।

बलोचिस्तान

क़लात का शासक नसीर खाँ सन् १७९५ में मर गया। उसके उत्तराधिकारी इतने योग्य न थे कि वे क़लात का अधिक विस्तार कर सकते। अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाई में मीर महराब खां पर अभियोग लगाया गया कि वह गुप्त रूप से अंग्रेज़ों का विरोध करता था। अतएव सन् १८३९ में कुछ सेना क़लात के विरुद्ध भेजी गई। वहाँ पर भारत सरकार की ओर से एक राजनीतिक एजेंट नियुक्त हुआ और सन् १८४५ में क़लात भी एक प्रकार से अंग्रेज़ों के अधीन हो गया।

१७६१ में भारत की राजनीतिक दशा

मुहम्मद शाह के शासन-काल के आरंभ से भारतवर्ष के इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालने से पता चलता है कि इस बीच में मराठों ने न केवल पश्चिमी भारतवर्ष में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था, बल्कि मैसूर, अर्काट, हैदराबाद, उड़ीसा, बंगाल, इलाहाबाद, मालवा, गुजरात, आगरा, दिल्ली, अजमेर, लाहौर और मुलतान के प्रांत पर भी उन्होंने हाथ मारा था। इसमें संदेह नहीं कि सन् १७६० में हिंदुस्तान में मराठों ने एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित कर लिया था और यदि वे सन् १७६१ में पानीपत की लड़ाई में न हार जाते तो संभव है कि वे अंग्रेज़ों को भी अर्काट और बंगाल से निकाल कर सारे भारतवर्ष में चक्रवर्ती राज्य स्थापित कर लेते। परंतु सदाशिव राव का लड़कपन, रुहेली शहाब-उद्दीन का निर्दयता-पूर्ण व्यवहार, अहमद

के अधीन रियासत बना लिया था। इस पर रियासत के दीवान और प्रजा बिगड़ गई। सन् १८०८ में अंग्रेज़ी सहायक सेना को रियासत के तीस हज़ार लोगों ने घेर लिया और देश में अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह हो गया। परंतु यह विद्रोह शीघ्र ही दबा दिया गया।

बुंदेलखंड

बसीन की संधि द्वारा बाजीराव पेशवा ने अंग्रेज़ों की सहायक सेना के खर्च के लिए दक्षिण का कुछ इलाक़ा दे रक्खा था, परंतु बाद में अंग्रेज़ों ने इस इलाक़े के बदले पेशवा से कुछ इलाक़ा बुंदेलखंड में ले लिया था। इन दिनों इस इलाक़े में हर स्थानीय ज़मींदार उद्दंड हो रहा था और स्वयं ही अपने आपको राजा घोषित कर रहा था। विवश हो कर लार्ड मिंटो ने बुंदेलखंड पर चढ़ाई कर दी। अजयगढ़ और कालिंजर के प्रसिद्ध क़िले जीत लिये गये। उद्दंड और विद्रोही सरदारों ने अधीनता स्वीकार की और शांति स्थापित हुई। इसके कुछ दिन बाद जब अमीर खां पिंडारी ने नागपुर के राजा के इलाक़े पर आक्रमण किया, तब लार्ड मिंटो ने नागपुर के राजा की सहायता की, जिससे पिंडारियों की शक्ति बढ़ कर अंग्रेज़ी राज्य निज़ाम के इलाक़े के लिए हानिकारक सिद्ध न हो।

पड़ोसी शक्तियों से लार्ड मिंटो की संधियाँ

जब लार्ड मिंटो गवर्नर-जनरल हो कर भारत आया था, तब उन दिनों इंगलैंड का फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन से युद्ध छिड़ा हुआ था। नेपोलियन ने ईरान में एक दूत भेजा था, जिससे देश में चिंता की एक लहर दौड़ गई थी। लार्ड मिंटो ने इस समय पंजाब, काबुल, सिंध और ईरान के शासकों से मित्रता गांठने की आवश्यकता को अनुभव किया था।

सर चार्लस

पिछले अध्याय में बताया गया है कि काबुल के शासक शाह ज़मान ने सन् १७९९ में रणजीतसिंह को लाहौर का राजा मान लिया था। लाहौर पर अधिकार

मेटकाफ़

जमा कर रणजीतसिंह पंजाब के मध्यवर्ती ज़िले अपने आधिपत्य में ले आया था। अब वह सतलज नदी तक अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ा कर सतलज के दक्षिण में मालवा की सिक्ख रियासतों और मिसलों पर हाथ मारना चाहता था। इलाक़ा सरहंद के सिक्ख रईसों ने दिल्ली के अंग्रेज़ी अधिकारियों से सहायता माँगी। लार्ड मिंटो ने यह उचित समझा कि रणजीतसिंह का इलाक़ा अंग्रेज़ी इलाक़े के साथ न मिलने पाए, इसलिए उसने इलाक़ा सरहंद की सहायता करनी स्वीकार की और सर चार्लस् मेटकाफ़ को दूत बना कर लाहौर भेज दिया। अप्रैल सन् १८०९ में अमृतसर में एक संधि-पत्र तैयार किया गया, जिससे दोनों साम्राज्यों में मित्रता का संबंध स्थापित हो गया और सतलज नदी दोनों राज्यों में सीमा मान ली गई। सतलज के दक्षिण की रियासतें अंग्रेज़ी राज्य के अधीन मानी गईं और अंग्रेज़ी साम्राज्य की सीमा जमुना नदी से बढ़कर सतलज नदी तक आ पहुँची।

मौंट स्टूअर्ट एल्फिंस्टन, सर जान मेल्कम और मि० स्मिथ

काबुल के शासक शाह शुजा के पास मौंट स्टूअर्ट एल्फिंस्टन को दूत बना कर भेजा गया। उस समय शाह शुजा पेशावर में था। वहाँ पर अंग्रेज़ों ने शाह शुजा से यह प्रतिज्ञा ली कि वह अपने साम्राज्य में फ्राँसीसियों की सेनाओं को न घुसने देगा। ईरान में भी सर जान मेल्कम को दूत बना कर भेजा गया और ईरान-सम्राट् से भी यह संधि हुई कि वह अंग्रेज़ों के किसी शत्रु को अपने साम्राज्य में से न गुज़रने देगा। इसी तरह सिंध में भी बंबई से मि० स्मिथ को हैदराबाद के अमीरों के पास भेजा गया और यह संधि हुई कि अमीर फ्राँसीसियों को अपने देश में न आने देंगे।

लार्ड मिंटो के

पड़ोसी शक्तियों से संधि द्वारा फ्राँसीसियों के लिए भारत के स्थल मार्गों को रोक कर लार्ड मिंटो ने हिंद महासागर में फ्राँस के उपनिवेशों की ओर ध्यान

सामुद्रिक युद्ध

दिया। यूरोप में नेपोलियन ने हालैंड और बेलजियम दोनों को अपने साम्राज्य में मिला लिया था और इस प्रकार हालैंड के सब उपनिवेश फ्रांस साम्राज्य के अंतर्गत आ गये थे। दक्षिण अफ्रीका, मडेगास्कर, मारिशस और बोरनियों के द्वीप, लंका और उत्तरी भारत के द्वीपों में सुमात्रा, जावा, बाली इत्यादि सब द्वीप अब फ्रांसीसियों के हाथ आ गये थे। ये सब उपनिवेश फ्रांस की सामुद्रिक शक्ति के केंद्र थे और इनसे अंग्रेजों को सदैव शंका बनी रहती थी। लार्ड मिंटो ने हिंद महासागर से फ्रांसीसी शक्ति को निकालने का निर्णय कर लिया और इसलिए सन् १८११ में उसकी आज्ञा से अंग्रेजों के जंगी बेड़ों ने मारीशस और उसके अधीन द्वीपों पर अधिकार जमा लिया। सन् १८११ में सुमात्रा और जावा के द्वीप जीते गये और दक्षिण अफ्रीका और लंका पर अंग्रेजों का आधिपत्य हुआ। हिंद महासागर से फ्रांस के प्रभाव के निकल जाने से यह महासागर एक प्रकार से अंग्रेजी झील बन गई। इसके इर्द-गिर्द के देश अंग्रेजी साम्राज्य में मिल गये थे। जब सन १८१८ में नेपोलियन क़ैद हो कर सेंट हेलेना भेज दिया गया, तब दक्षिण अफ्रीका, लंका और मारीशस तो अंग्रेज़ों के प्रभुत्व में ही रहे और पूर्वीय हिंद के द्वीप हालैंड वालों को वापस दिए गए।

प्रश्न

१. लार्ड मिंटो ने किन परिस्थितियों में हिंद महासागर के विभिन्न द्वीपों को जीता?

२. निष्पक्ष नीति से तुम्हारा क्या अभिप्राय है और यह नीति कहाँ तक सफल रही?

३. उत्तर-पश्चिमी सीमा की रियासतों के साथ लार्ड मिंटो का संबंध बताओ।

दसवाँ अध्याय

लार्ड मोयरा अर्थात् मारक्विस आफ़ हेस्टिंग्ज़ १८१३-१८२३ और लार्ड एम्हर्स्ट १८२३-१८२८

कंपनी के आज्ञा-पत्र पर विचार

मारक्विस आफ़ हेस्टिंग्ज़ के शासन-काल में सबसे पहला प्रश्न जो पार्लियामेंट में पेश हुआ वह यह था कि ईस्ट इंडिया कंपनी के आज्ञा-पत्र को समाप्त कर दिया जाय अथवा और बीस वर्ष के लिए बढ़ा दिया जाय। पार्लियामेंट के सामने इस समय दो विचार थे। पहला तो यह कि क्या कंपनी के व्यापारिक अधिकार पहले जैसे रहने दिए जायँ अथवा उसे भारतवर्ष में शासन करने का अधिकार दिया जाय। वास्तव में बात भी विचित्र थी कि एक व्यापारिक कंपनी को एक विस्तृत देश पर राज्य करने की आज्ञा दी जाती, अथवा एक साम्राज्य के स्वामी को व्यापार की आज्ञा होती। परंतु बहुत वाद-विवाद के पश्चात् ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में बीस वर्ष तक शासन करने का अधिकार मिला, परंतु भारत का व्यापार उससे छीन लिया गया और सब अंग्रेज़ों को भारत में व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। इस १८१३ के आज्ञा-पत्र की एक और बात महत्त्व-पूर्ण यह है कि चार्टर (आज्ञा-पत्र) में पार्लियामेंट ने कंपनी पर यह शर्त लगा दी कि भविष्य में वह भारतवासियों की शिक्षा इत्यादि के लिए एक लाख रुपया वार्षिक अपनी आमदन में से खर्च करे।

नैपाल की लड़ाई सन १८१४-१६

लार्ड हेस्टिंग्ज़ वास्तव में लार्ड वेलेज़ली की नीति के विरुद्ध था, परंतु भारत में आकर उसको लार्ड वेलेज़ली की ही नीति पर चलने से भारत के एक बड़े भारी इलाक़े को अंग्रेज़ी साम्राज्य के प्रभुत्व में लाना पड़ा। सब से पहले उसे नैपाल के गोरखों से

लड़ना पड़ा। गोरखे वास्तव में राजपूत जाति से संबंध रखते थे। पृथ्वीराज को जीत कर जब भारत में तुर्कों ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया, तब आगरा, दिल्ली और अवध के राजपूतों में से कुछ तो भाग कर राजपूताने में चले गये और दूसरों ने भाग कर हिमालय पर्वत के पहाड़ी इलाक़ों में आश्रय लिया। वे राजपूत, जो हिमालय के उन पहाड़ी प्रदेश में बसे जो सतलज और रियासत सिक्किम के मध्य में स्थित है, गोरखे कहलाए। कई शताब्दियों तक तो यह प्रदेश कई एक रियासतों में बंटा रहा, परंतु सन् १७६८ में काठमांडू के राजा ने इर्द-गिर्द के सब पहाड़ी राजाओं को अपने अधीन करके एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित कर लिया। उत्तर में तो वे हिमालय के उच्च शिखरों के कारण अपने साम्राज्य को फैला न सकते थे, परंतु दक्षिण में उनके लिए मैदान खुला पड़ा था। धीरे-धीरे उन्होंने बंगाल और गोरखपुर के इलाक़ों में कई एक गांवों पर अधिकार जमा लिया और लार्ड हेस्टिंग्ज को सन् १८१४ में नेपाल के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करनी पड़ी। जनरल गिलेस्पी और जनरल आक्टर लोनी की अध्यक्षता में सेना भेजी गई। जनरल गिलेस्पी लड़ाई में मारा गया, परंतु जनरल आक्टर लोनी ने वीरता के साथ गोरखा जनरल अमरसिंह को मलाऊँ के क़िले का घेरा डाल कर हरा दिया और अंग्रेज़ी सेना नेपाल की राजधानी काठमांडू के पास जा पहुंची। गोरखों ने विवश होकर संधि की प्रार्थना की। सन् १८१६ में सिगौली में संधि-पत्र लिखा गया, जिसके अनुसार कमाऊँ, गढ़वाल और शिमला के प्रदेश अंग्रेज़ों के हाथ आए, परंतु तराई का कुछ इलाक़ा गोरखों के अधिकार में ही रहा और काठमांडू में एक अंग्रेज़ रेज़ीडेंट नियुक्त किया गया। उस दिन से लेकर आज तक गोरखों और अंग्रेज़ों में मित्रता इसी प्रकार बनी आ रही है और बहुत से गोरखे भारतीय सेना में नौकरी करते हैं। इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि अलमोड़ा, नैनीताल, मसूरी और शिमला जैसे स्वास्थ्य-प्रद नगर अंग्रेज़ों के

अधिकार में आये। बाद में नैनीताल यू० पी० सरकार की और शिमला भारत सरकार तथा पंजाब सरकार की गरमियों की राजधानी हुई।

पिंडारियों का दमन
सन् १८१७

जब अंग्रेज़ी सरकार नेपाल के साथ युद्ध करने में लगी हुई थी और पहले-पहले ही उसके गिलेस्पी जैसे प्रख्यात सेना-नायक को हार कर मृत्यु के मुँह में जाना पड़ा था, तब हर भारतीय राजा और नवाब को यह आशा बंध गई थी कि अंग्रेज़ों को भारत से निकाल देने में सफल होना असंभव नहीं। रणजीतसिंह जैसे बुद्धिमान और दूरदर्शी शासक ने स्थानीय लाभ उठाने के विचार से २० हज़ार सेना सतलज नदी के किनारे भेज दी थी। इन दिनों पिंडारियों ने चारों ओर तबाही मचा दी थी। पिंडारियों का नाम पहले-पहल तब सुना गया था, जब मराठों से औरंगज़ेब की लड़ाई हो रही थी। वास्तव में पिंडारी लोग वे थे, जो सेना का सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने पशुओं पर लाद कर पहुंचाते थे, और विविध स्थानों से सामान इत्यादि इकट्ठा करके सेनाओं को देते थे। औरंगज़ेब के मरने के बाद भी पूरी एक शताब्दी तक भारत में अशांति का राज्य रहा और इस बीच में युद्ध-स्थल का चित्र प्रत्यक्ष होता रहा। इस अशांति के समय में पिंडारियों की संख्या बहुत बढ़ गई। इनमें हर जाति और हर संप्रदाय के लोग सम्मिलित थे। शासन-प्रणाली की दुर्बलता का लाभ उठा कर इन्होंने लूट-मार करना आरंभ कर दिया था। इनमें दो-दो तीन-तीन सौ के गिरोह पचास-पचास मील एक बार ही चले जाते थे और सेना को पहुँचने से पहले ही उपजाऊ इलाक़ों को लूट कर दूर निकल जाते थे। यह मराठों की सेना के साथ-साथ रहते और इनका एक-एक दस्ता वास्तव में होलकर और सिंधिया की सेनाओं का अंग था। सन् १८१५ में इन्होंने निज़ाम के राज्य को कृष्णा नदी तक लूट लिया और सन् १८१६ में उत्तरीय-सरकार को लूट-खसूट कर

दिया । नैपाल की लड़ाई से निपट कर लार्ड मोयरा ने, जिसे नैपाल की लड़ाई में विजय पाने पर मारकिस आफ़ हेस्टिंग्ज़ की उपाधि मिली थी, पिंडारियों को दबाने का निश्चय कर लिया । उसका यह विचार था कि पिंडारियों को मालवे में एक लाख बीस हज़ार की सेना से घेर लिया जाय और इस सेना को चार भागों में बाँट कर मालवा पर चारों दिशाओं से आक्रमण किया जाय । दक्षिणी सेना का नेतृत्व गवर्नर-जनरल ने स्वयं ग्रहण किया । सिंधिया पर ज़ोर डाल कर उसे अंग्रेज़ों की सहायता पर विवश किया गया । इसके बाद पिंडारियों को चारों ओर से घेर लिया गया । पिंडारी सैनिक तो थे ही नहीं । लुटेरे ही थे । सन् १८१७ के अंत तक उनके सब जत्थे टूट गए । बहुत से मारे गए, जो बचे उन्होंने अधीनता स्वीकार की और भविष्य के लिए शांतिमय प्रजा बन गए । उनके सर्दारों को निर्वाह के लिए जागीरें दे दी गईं । अमीर ख़ाँ रुहेला को, जो राजपूताने में पिंडारियों का सरदार था, टौंक की रियासत का नवाब बनाया गया । केवल एक सरदार चीतू ने अधीनता न मानी. परंतु उसका जत्था टूट गया और वह भी अंत में असीरगढ़ के क़िले के पास एक शेर से मारा गया । इसके बाद पिंडारियों का अंत हो गया । इस आपत्ति से भारत का छुटकारा हुआ ।

मराठों की चौथी लड़ाई, १८१७

अभी पिंडारियों से लड़ाई हो ही रहा था कि मराठों से भी अंग्रेज़ों का युद्ध छिड़ गया । पेशवा बाजी राव इस चिंता में था कि वह फिर से मराठा सरदारों के जत्थे का मुखिया बन जाय । जब पिंडारियों से लड़ाई शुरू हुई तब उसने इस अवसर को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उचित जाना । उसका विचार था कि अंग्रेज़ों को इतना अवकाश न मिलेगा कि वे उससे निपट सकें । उन दिनों गायकवाड़ की ओर से गंगाधर शास्त्री पूना सरकार से समझौता करने के लिए भेजा गया, परंतु पेशवा के मंत्री त्र्यंबक जी ने उसे मरवा दिया । अंग्रेज़ों ने चाहा कि

त्र्यंबक जी को उन्हें सौंप दिया जाय, परंतु पेशवा अपने मंत्री को बचाना चाहता था। उसने अंग्रेज़ों की छावनी किर्की पर आक्रमण कर दिया, परंतु पेशवा हारा और वह सितारा की ओर भागा। वहां भी वह हारा। अंत में असई में पेशवा ने अपने आपको सर जान मेलकम की दया पर छोड़ दिया। कंपनी ने उसे आठ लाख रुपया वार्षिक पेनशन देकर बिठूर भेज दिया और सितारा के नाम-मात्र राजा को सितारा का राजा स्वीकार कर खानदेश, नासिक, धारवाड़, बेलगाँव, रत्नगिरि और कोलाबा इत्यादि बाक़ी ज़िलों को अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला कर बंबई प्रांत बनाया।

मराठा युद्ध और भौंसला आदि राज्य

पेशवा के विद्रोह पर नागपुर के मराठा और भौंसला राजा और इंदौर के शासक होलकर ने भी विद्रोह का झंडा खड़ा किया। पर भोंसला सीताबल्दी और होलकर को मेहदपुर पर भारी हार हुई। भौंसला से गढ़मंडला, जबलपुर, दमोह, सागौर, नरसिंहपुर, स्योनी, होशंगाबाद और बैतूल के इलाक़े लिए गए तथा होलकर से टोंक और सरोंज का इलाक़ा लेकर अमीर खां पिंडारी को दिया गया। इस युद्ध के बाद राजपूताने की समस्त २२ रियासतें कंपनी के अधीन हो गई।

सन १८२३ में लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। उस समय पंजाब, काश्मीर, अफ़ग़ानिस्तान, सिंध, और बलोचिस्तान के सिवा सारे भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का राज्य स्थापित हो गया था।

लार्ड एम्हर्स्ट १८२३—१८२८

बर्मा की पहली

जिन दिनों बंगाल में क्लाइव ने पलासी के युद्ध में विजय पाई थी, उन्हीं दिनों बर्मा में एक बर्मी वंश के राजा अलंपरा ने साम्राज्य की नींव रखी थी। इस

लड़ाई, १८२४

वर्मी वंश ने रंगून प्रांत और पीगू को जीत लिया और सन् १७६६ में स्याम के सम्राट् से तनासिरम भी ले लिया। सन् १७८४ में अराकान का इलाक़ा भी जीता जाने पर इस वर्मी साम्राज्य का एक अंग बन गया। बंगाल के पूर्व में विभिन्न इलाक़ों को जीतते-जीतते इस वर्मी शासक ने सन् १८१२ में आसाम को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। जब लार्ड हेस्टिंग्ज़ पिंडारियों और मराठों के साथ युद्ध में फंसा था, तब वर्मा के राजा ने अंग्रेज़ी कंपनी को एक चिट्ठी लिखी कि चटगाँव, ढाका, मुर्शिदाबाद और क़ासिम बाज़ार का इलाक़ा उसे सौंप दिया जाय। वह कदाचित् यह समझता था कि अंग्रेज़ मराठों के युद्ध में फंसे रहने के कारण उससे डर जायँगे। परंतु लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने इस चिट्ठी को बनावटी और जाली समझ कर उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इधर वर्मा के राजा को स्याम के राजा ने हरा दिया और वह चुप हो गया। परंतु जब वर्मियों ने आसाम जीत लिया, तब वे बंगाल की समस्त पश्चिमी सीमा पर अंग्रेज़ों के पड़ोसी हो गए। सन १८२३ में वर्मियों ने चटगांव के पास अंग्रेज़ी द्वीप शाहपुरी पर आक्रमण कर दिया। जब लार्ड एम्हर्स्ट ने वर्मा के राजा से इस आक्रमण का उत्तर माँगा, तब उसे कोई संतोष-जनक उत्तर न दिया गया। अंत में अंग्रेज़ों ने वर्मियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेज़ी सेना ने बंगाल की खाड़ी को पार करके रंगून पर आक्रमण कर दिया और स्थल-मार्ग से आसाम और अराकान पर भी चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर बारकपुर की भारतीय सेना ने कालापानी पार करने से इनकार कर दिया, क्योंकि उनके विचार में समुद्र पार करना हिंदू धर्म के विरुद्ध था। सेना के उस दस्ते को, जिसने वर्मा जाने से इनकार किया था, गोली से उड़ा दिया गया और इस प्रकार यह सेना विद्रोह दब गया। यह लड़ाई दो वर्ष तक जारी रही। अंत में वर्मी सेना का नायक बंदूला लड़ाई में मारा गया और वर्मी सम्राट्

ने संधि की प्रार्थना की। सन् १८२६ में यंदबू पर एक संधि-पत्र लिखा गया, जिसके अनुसार बर्मा के सम्राट् ने आसाम, मीनापुर और काचार के इलाक़े अंग्रेज़ों को दे दिए। तनासरम और अराकान के प्रांत भी अंग्रेज़ों को सौंपे गए। बर्मा के सम्राट् ने एक करोड़ रुपया युद्ध का हर्जाना भी अंग्रेज़ों को दिया और भविष्य के लिए एक अंग्रेज़ दूत अपने दरबार में रखना स्वीकार किया।

भरतपुर की विजय सन् १८२६

लार्ड एम्हर्स्ट के शासन-काल में एक और महत्त्व-पूर्ण घटना हुई जो उल्लेखनीय है। जब लार्ड एम्हर्स्ट बर्मा की लड़ाई में फंसा था, तब भरतपुर में दंगा हो गया। यहाँ का राजा बालक था और उसका चचा दुर्जन साल उसका संरक्षक नियुक्त हुआ था, परंतु दुर्जन साल अपने भतीजे को बंदी कर के स्वयं गद्दी पर अधिकार जमा लिया। सन् १८१८ में भरतपुर बाक़ी राजपूताने की रियासतों की भाँति अधीन रियासत थी और अंग्रेज़ों ने इस बच्चे को राजा माना हुआ था। उनको दुर्जन साल का यह काम बहुत बुरा लगा। भरतपुर के विरुद्ध सेना भेजी गई। भरतपुर का क़िला, जिसे जीतने में लार्ड लेक असफल रहा था और जिसे अजेय समझा जाता था, अंत में जीता गया। दुर्जन साल को क़ैद करके बनारस भेजा गया और बालक बलवंतसिंह को दोबारा भरतपुर की गद्दी पर बिठाया गया।

शिमला गर्मियों की राजधानी

इन घटनाओं के बाद लार्ड एम्हर्स्ट उत्तरीय भारत की तरफ़ गया। सन् १८०६ में सम्राट् शाह आलम मर चुका था। उसके लड़के अकबर दूसरे को केवल एक पेनशनिया समझा गया और पहली बार भारत के गवर्नर-जनरल ने गर्मियों की ऋतु शिमला में बिताई। इसके बाद धीरे-धीरे शिमला भारत-सरकार की गर्मियों की राजधानी बन गई।

प्रश्न

१. संक्षेप से मराठों की चौथी लड़ाई के कारण, मुख्य घटनायें तथा परिणाम लिखो। (मैट्रिक १९३७)

२. संक्षेप से बर्मा की पहली लड़ाई के कारण, मुख्य घटनायें और परिणाम लिखो। (मैट्रिक १९३८)

३. बर्मा की पहली लड़ाई पर संक्षिप्त नोट लिखो।
(मैट्रिक १९४०,१९४२)

४. पिंडारियों पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९४०;मैट्रिक १९४१)

ग्यारहवाँ अध्याय

लार्ड विलियम बैंटिंक १८२८—१८३५
और
सर चार्ल्स मेटकाफ १८३५—१८३६

साम्राज्य में नए इलाकों का मिलना

लार्ड विलियम बैंटिंक के शासन-काल में चाहे युद्ध तो कोई नहीं हुआ, परंतु फिर भी कंपनी के इलाक़ों में कुछ वृद्धि अवश्य हुई। पूर्व में जब कचार का राजा विद्रोह में मारा गया, तब उसका कोई उत्तराधिकारी न होने पर वह रियासत अंग्रेज़ी राज्य में मिला ली गई। मैसूर का राजा कृष्णाराव, जिसको लार्ड वैलज़्ली ने सन् १७९९ में मैसूर की गद्दी पर बिठाया था, अत्याचारी, विलासी, मूढ़ और निर्बुद्धि था। वह प्रजा पर बड़ा अत्याचार करता था। सन् १८३१ में उसको गद्दी से हटाया गया और

रियासत को अंग्रेज़ी प्रबंध में ले लिया गया। सन् १८३४ में कुर्ग के राजा ने अपने वंश के सब आदमियों की हत्या कर दी। इस अपराध के दंड में राजा को गद्दी से उतार कर बनारस भेज दिया गया और उसका इलाक़ा अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला लिया गया।



लार्ड विलियम बैंटिक

प्रबंध-संबंधी सुधार

लार्ड विलियम बैंटिक का शासन-काल साम्राज्य की अंतरीय दशा के सुधार में बीता। नैपाल, मराठे, पिंडारी और बर्मा की लड़ाइयों में सरकार को बहुत खर्च करना पड़ा और कंपनी पर क़र्ज़ा इतना बढ़ गया था कि उसका वार्षिक सूद भी आमदन में से नहीं दिया जा सकता था। इसके अतिरिक्त हर वर्ष कंपनी की सरकार को आमदन से ज़्यादा खर्च करना पड़ता था। इसलिए लार्ड विलियम बैंटिक के सामने सब से पहला प्रश्न यह था कि किसी भांति खर्च कम किया जाय और आमदन बढ़ाई जाय। बंगाल के बंदोबस्त को स्थायी करने में जो ग़लती की गई थी, उसका अब पता चला, क्योंकि बंगाल और बिहार के लगान में कोई वृद्धि न हो सकती था। अतः यह निर्णय किया गया कि कंपनी के नए इलाक़ों में बंदोबस्त बीस या तीस वर्ष के लिए किया जाय। आगरा, मद्रास और बंबई के प्रांतों में बंदोबस्त अस्थायी रूप से किया गया। लार्ड विलियम बैंटिक को आमदन बढ़ाने का दूसरा उपाय यह सूझा कि मुग़ल-काल के जागीरदारों के सनद-पत्रों की जांच की जाय। बात यह थी कि मुग़ल-साम्राज्य की अवनति के दिनों में कई एक ज़मींदारों और कर्मचारियों ने लगान का

अधिकांश भाग जागीरों के रूप में दबा रखा था और इन जागीरों के समर्थन में उन्होंने झूठे आज्ञा-पत्र बना रखे थे। राज्य को बहुत हानि पहुँच रही थी। लार्ड विलियम बैंटिक ने आज्ञा दी कि सब जागीरदारों के आज्ञा-पत्रों का जाँच की जाय और जिनके पट्टे झूठे व जाली सिद्ध हों, उनकी जागीरें ज़ब्त की जायँ। इस प्रकार से बहुत-सी जागीरें ज़ब्त हो गई और सरकार की आमदन बढ़ गई।

खर्च की कमी

आमदन बढ़ाने के अतिरिक्त विलियम बैंटिक ने खर्च में भी बहुत कमी की। हर विभाग में काट की गई। लार्ड कार्नवालिस ने अदालतों में अंग्रेज़ जज नियुक्त किए थे, परंतु भारतीय जज कम वेतन पर मिल सकते थे। इसलिए छोटे पदों पर भारतीयों को रखा गया। पहले (पृष्ठ ६२) बता दिया गया है कि लार्ड क्लाइव ने सेना का दोहरा भत्ता हटा कर अकहरा भत्ता कर दिया था। अब युद्ध का समय बीत चुका था और सारे भारतवर्ष में अंग्रेज़ी राज्य स्थापित हो चुका था, इसलिए यह निर्णय किया गया कि भत्ते पर अधिक रुपया खर्च करने की आवश्यकता नहीं। अतः सेना का भत्ता आधा कर दिया गया। इस से सेना में बहुत अशांति फैली, परंतु लार्ड विलियम बैंटिक ने धैर्य से काम लिया और अपने सुधारों में सफल रहा।

चार्टर-एक्ट १८३३

सन् १८१३ में कंपनी के आज्ञा-पत्र की अवधि में बीस वर्ष की वृद्धि हुई थी। सन् १८३३ में यह अवधि समाप्त होगई। परंतु अब इंगलैंड में स्वतंत्र व्यापार का आंदोलन चल रहा था और पार्लियामैंट ईस्ट इंडिया कंपनी को भारतीय व्यापार का एकाधिकार देने को तैयार न थी। इसलिए १८३३ के चार्टर-एक्ट अनुसार कंपनी के सब व्यापारिक अधिकार छीन लिए गए और लाभ के रूप में उन्हें यह अनुमति दी गई कि भारत की आमदन में से दस प्रतिशत लाभ के रूप

में कंपनी के हिस्सेदारों में बांट लें। दूसरा यह निर्णय हुआ कि बंगाल के गवर्नर को सारे भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया जाय और बंबई तथा मद्रास सरकारों से क़ानून बनाने का अधिकार छीन कर भारत सरकार की प्रबंधकारिणी समिति को सौंप दिया जाय। क़ानून बनाने के लिए प्रबंधकारिणी समिति में एक और सदस्य बढ़ाया गया और पहला क़ानूनी सदस्य लार्ड मेकाले नियुक्त हुआ, जो इंगलैंड का प्रख्यात इतिहासकार हो चुका है। इस आज्ञा-पत्र में एक महत्व की दूसरी बात यह थी कि भविष्य में धर्म, स्थान, जन्म, जाति और रंग के विचार से किसी भारतीय अथवा अंग्रेज़ी प्रजा में किसी मनुष्य को किसी पद के अयोग्य नहीं समझा जायगा।

भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रारंभ

लार्ड कार्नवालिस के शासन-काल में कुछ अंग्रेज़ी पादरी बंगाल में ईसाई मत प्रचार के लिए आए। परंतु उन दिनों ईस्ट इंडिया कंपनी किसी ऐसे अंग्रेज़ को, जिसका कंपनी से संबंध न हो, भारत में न आने देती थी। इन पादरियों ने पहले-पहल डच लोगों की बस्ती श्रीरामपुर में ईसाई धर्म का प्रचार करना आरंभ किया और जब सन् १८१३ में पार्लियामेंट ने भारत में ईसाइयों को अपने धर्म के प्रचार की आज्ञा दे दी, तब से ये लोग प्रकट रूप से अपना काम करने लगे। इन पादरियों ने सब से पहले भारत-वासियों को अंग्रेज़ी की शिक्षा देनी आरंभ की और यह अंग्रेज़ी पढ़े हुए भारत-वासी कंपनी की नौकरी करने लगे। सन् १८१३ में पार्लियामेंट ने कंपनी को आदेश किया था कि वह अपनी आमदन में से एक लाख रुपया वार्षिक भारत-वासियों की शिक्षा पर खर्च करे। वारेन हेस्टिंग्ज़ के शासन-काल में विलसन, कोलब्रुक और कुछ दूसरे अंग्रेज़ हिंदू धर्म-शास्त्र और शरह-मुहम्मदी का अनुवाद कर रहे थे। अदालतों में अंग्रेज़ जजों की सहायता के लिए मौलवियों और पंडितों की आवश्यकता थी, परंतु पिछली शताब्दी

के निरंतर युद्ध के कारण सब पाठशालाएँ और दूसरी शिक्षा-संबंधी संस्थाएं बंद हो चुकी थीं और शिक्षा को प्रोत्साहन देने वाले राजा, नवाब और ज़मींदार मर-खप गए थे। इसलिए अरबी, फ़ारसी, और संस्कृत आदि भाषाओं में शिक्षित व्यक्तियों का मिलना कठिन था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि संस्कृत, अरबी और फ़ारसी की शिक्षा के लिए सरकारी खर्च पर संस्थाएं खोली जायँ। सन् १८२३ में यह निर्णय किया गया कि कलकत्ता में एक शिक्षा समिति बनाई जाय और पार्लियामेंट से स्वीकृत एक लाख रुपया इस समिति को सौंप दिया जाय और इसको यह आदेश दिया जाय कि यह रुपया संस्कृत, अरबी और फ़ारसी की शिक्षा पर ख़र्च करे। इस शिक्षा-समिति ने बनारस, आगरा और दिल्ली में पूर्वीय भाषाओं की उन्नति के लिए कालेज खोले।

राजा राम मोहन राय

इस बीच में अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों की संख्या भी काफ़ी हो चुकी थी। इनमें सब से प्रसिद्ध राजा राम मोहन राय था। यह एक ब्राह्मण ज़मींदार का पुत्र था। इसका पिता मुर्शिदाबाद के दर्बार में नौकर था और इसने स्वयं अरबी, फ़ारसी और संस्कृत पढ़ कर अंग्रेज़ी में भी शिक्षा पाई थी। यह कुछ देर तक कंपनी के समय में एक अंग्रेज कलक्टर के नीचे दीवान भी रह चुका था। परंतु अब इसने नौकरी छोड़ कर अंग्रेज़ी शिक्षा के लिए कलकत्ता में स्कूल खोल रक्खा था। इसने सन् १८३० में ब्रह्म-समाज की नींव रक्खी। अंग्रेज़ी राज्य में राजा राम मोहन राय ही सब से पहला भारतीय था, जो सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय विषयों में भारत-वासियों का पथ-प्रदर्शक बना। यह सन् १७७४ में ज़िला हुगली में पैदा हुआ था और सन् १८३३ में इंगलैंड में परलोक सिधार गया। लार्ड हेस्टिंग्ज़ के शासन-काल में राजा राम मोहन राय ने एक आवेदन-पत्र, जिस पर

हज़ारों लोगों के हस्ताक्षर थे, इस अभिप्राय से पेश किया कि सरकार पूर्वीय प्राचीन भाषाओं के बदले अंग्रेज़ी भाषा में शिक्षा दे। अंग्रेज़ पादरी भी इस प्रार्थना-पत्र के पक्ष में थे। वे सोचते थे कि इससे ईसाई धर्म के प्रचार में सहायता मिलेगी। परन्तु राजा राम मोहन राय और उसके मतानुयायी यह समझते थे कि अंग्रेज़ी शिक्षा पा कर भारतीय अंग्रेज़ी शासन में नौकरी पाने में सफल होंगे और अपने शासकों की सभ्यता और संस्कृति का भली-भाँति अध्ययन कर सकेंगे। परंतु सरकार ने इस आवेदन-पत्र को न माना। उनका विचार था कि भारतीय अंग्रेज़ी शिक्षा पा कर और पश्चिमी सभ्यता को जान कर अंग्रेज़ों की बराबरी करेंगे, जिससे भारत में कंपनी के शासन को धक्का पहुँचेगा। इसके अतिरिक्त विलसन और कोलब्रुक जैसे कई अंग्रेज़ों का विचार था कि भारतीयों को नैतिक उन्नति और मानसिक प्रगति के लिए उनकी प्राचीन भाषाओं का ज्ञान ही काफ़ी है। इसलिए अंग्रेज़ी शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं। परंतु कुछ ही वर्ष बाद इस बात का भली-भाँति पता चल गया कि प्राचीन विद्याओं के पढ़ने के लिए भारतीय अपनी पुरानी संस्थाओं में जाते थे, परंतु इन कालेजों में आने का उद्देश्य भाषाओं का ज्ञान पाना न था। इन कालेजों में तो वही लोग आते थे जिनका ध्येय पढ़ कर नौकरियाँ पाना था, परंतु सरकारी नौकरी के लिए अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान अनिवार्य्य था। इसलिए धीरे-धीरे सब कालेजों में अंग्रेज़ी शिक्षा शुरू कर दी गई। अंत में जब सन् १८३४ में लार्ड मेकाले भारत सरकार का क़ानूनी सदस्य बना, तब उसने अंग्रेज़ी शिक्षा के पक्ष में अपना निर्णय दिया। उसका यह विचार था कि अंग्रेज़ी सरकार के हित के विचार से भी यह आवश्यक है कि सरकारी दफ़्तरों का काम अंग्रेज़ी भाषा में हो। अंग्रेज़ भारत में इतनी संख्या में नहीं आ सकते कि दफ़्तरों की सब नौकरियों पर रखे जा सकें। इसलिए यह आवश्यक है कि भारतीयों को क्लर्क भरती किया जाय।

परंतु भारतीय क्लर्क तब ही किसी काम के हो सकते थे, जब कि वे अंग्रेज़ी भाषा का भली-भाँति ज्ञान रखते हों। लार्ड मेकाले का दूसरा यह विचार था कि अंग्रेज़ी भाषा पढ़कर भारतीय पश्चिमी सभ्यता के रंग में इतने रंग जायँगे कि शनैः शनैः उनका चाल-ढाल, रंग-ढंग सब पश्चिम वालों का-सा हो जायगा। वे यूरोपियन रीति के अनुसार जीवन बिताना पसंद करेंगे और इनको अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए अंग्रेज़ी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी। यह बात अंग्रेज़ी व्यापार के लिए अत्यंत लाभदायक होगी। लार्ड मेकाले का तीसरा यह विश्वास था कि प्राचीन पूर्वीय भाषाओं में कुछ भी नहीं। उसके विचार में पूर्वीय धर्म और सभ्यता बहुत ही तुच्छ थी। उनसे अज्ञान और बर्बरता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता था। मेकाले का चौथा यह विचार था कि यदि यह मान भी लिया जाय कि पश्चिमी सभ्यता से भारतीय अंग्रेज़ों की बराबरी चाहेंगे और अंग्रेज़ी राज्य को धक्का पहुँचाएँगे तो उस विचार से यह बात ही अंग्रेज़ों के लिए कम गौरव का विषय न होगी कि उन्होंने भारत के बीस-पचीस करोड़ लोगों को अंग्रेज़ी शिक्षा देकर पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का अनुयायी बना दिया। युक्तियों से लार्ड मेकाले ने लार्ड विलियम बैंटिक को अंग्रेज़ी शिक्षा के पक्ष में कर लिया और तब से अंग्रेज़ी शिक्षा भारत में आरंभ हो गई। अब तक अदालतों और कचहरियों में सब काम फ़ारसी भाषा में होता था। अब सन् १८३७ में यह आदेश दिया गया कि भविष्य में सरकारी दफ्तरों में सब कारवाही अंग्रेज़ी भाषा में हो अदालतों और कचहरियों में सब काम लोगों की अपनी मातृ-भाषा में हों।

सामाजिक सुधार सती और ठगी

लार्ड विलियम बैंटिक का सब से महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार सती प्रथा का निषेध था, जो सन् १८२९ में किया गया। इस क़ानून के अनुसार हिंदू विधवाओं का अपने मृतक पतियों के साथ जल मरना अपराध समझा गया और यह घोषणा की गई

कि सती की यह प्रथा अमानुषीय है और हिंदू धर्म इस प्रथा की आज्ञा नहीं देता। दूसरे ठगी का दमन किया गया। भारत में प्रायः प्रत्येक प्रांत में ठगों के सुसंगठित गरोह बड़ी सड़कों के आस-पास रहते थे और अबोध और असावधान यात्रियों को केवल लूटने के लिए जान से मार डालते थे। लार्ड विलियम बैंटिक के शासन-काल में तीन हजार से अधिक ठग गिरफ्तार किए गए और मेजर सर विलियम स्लीमैन को इनके अपराधों की जांच करके उचित दंड देने के लिए नियुक्त किया गया। इस अफसर के प्रयत्नों द्वारा सारे भारतवर्ष से ठगी का लोप हो गया।

सर चार्ल्स मेटकाफ १८३५—१८३६

लार्ड विलियम बैंटिक जब सन १८३५ में अपने पद से रिटायर हो कर इंगलैंड चला गया, तब उसके स्थान पर चार्ल्स मेटकाफ स्थानापन्न गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। वह एक वर्ष ही इस पद पर रहा। उसके

पत्रों की स्वतंत्रता

शासन-काल की सब से महत्त्वपूर्ण घटना यह है कि उसने पत्रकारों को पूरी स्वतंत्रता दे दी। उस समय प्रेस सर्वथा अंग्रेज़ों के हाथ में ही था। लार्ड वेलेज़ली ने, जब वह युद्ध में फँसा था, पत्रों पर कड़ी रुकावटें लगा दी थीं। जब तक कि एक विशेष अधिकारी सारे के सारे लेखों को पढ़ न लेता था, वे प्रकाशित होने न पाते थे और जिन लेखों पर सरकारी अफसर आपत्ति करता था, वे काट दिए जाते थे। लार्ड हेस्टिंग्स इस सरकारी अफसर का पद तो काट में ले आया था, परंतु भविष्य में कुछ नियम ऐसे बना दिए गए थे, जिनका पालन संपादकों के लिए आवश्यक था। इन नियमों के अनुसार पत्र, पत्रिकाएँ सरकार की किसी कारवाही की आलोचना न कर सकती थीं और यदि कोई सरकार के किसी काम पर आलोचना करने का अपराध करता था तो उसे निर्वासित कर दिया जाता था। सर चार्ल्स मेटकाफ ने इन

सब नियमों और रुकावटों को दूर करके पत्रों को स्वतंत्र कर दिया। इससे कंपनी के डायरेक्टर अप्रसन्न हो गए और सन् १८३६ में उसको वापस बुला लिया गया और लार्ड आकलैंड गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ।

प्रश्न

१. लार्ड विलियम बैंटिंक के शासन, विद्या तथा समाज संबंधी सुधारों का वर्णन करो। (मैट्रिक १९३७, १९४१)

२. चार्टर एक्ट, सती, राजा राम मोहन राय पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९३८)

३. लार्ड विलियम बैंटिंक के शासन-काल का वृत्तांत लिखो। (भूषण १९४०)

४. तुम राजा राम मोहन राय के संबंध में क्या जानते हो ? उसने भारत के लिए क्या-क्या किया ? (मैट्रिक १९३३)

५. लार्ड मेकाले के शिक्षा-संबंधी विचारों के संबंध में तुम क्या जानते हो ? उसने अंग्रेज़ी शिक्षा के पक्ष में क्या युक्तियां दी थीं ?

६. सर चार्लस मेटकाफ़ के समय में प्रेस की क्या दशा थी ? उसने इस संबंध में क्या किया ?

७. सिद्ध करो कि लार्ड विलियम बैंटिंक ने भारत को शांति प्रदान की।

८. अंग्रेज़ी सरकार ने पहले पूर्वीय विद्यायों में शिक्षा देने का निर्णय क्यों किया ?

९. रेग्युलेटिंग एक्ट १७७३, पिट का इंडिया बिल १७८४, चार्टर एक्ट (आज्ञा-पत्र) १८१३ और चार्टर एक्ट १८३३ के संबंध में तुम क्या जानते हो ? अंग्रेज़ी सरकार ने यह क़ानून क्यों पास किये ?

ग्यारहवाँ अध्याय

लार्ड आकलैंड १८३६—१८४२

और

लार्ड एलेनबरा १८४२—१८४४

अफ़ग़ानिस्तान की पहली लड़ाई

हम पृष्ठ १२१ पर बता आए हैं कि लार्ड मिंटो के शासन-काल में अंग्रेज़ी सरकार की ईरान के बादशाह से यह संधि हुई थी कि वह अपने देश में से अंग्रेज़ों के किसी शत्रु को न आने देगा, और अंग्रेज़ों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि ईरान पर किसी दूसरी जाति ने आक्रमण किया तो वे ईरान की सहायता करेंगे। परंतु जब सन् १८२६ में रूस ने ईरान पर आक्रमण करके कोहकाफ़ का प्रदेश छीन लिया, तब ईरान के बादशाह ने अंग्रेज़ों से सहायता माँगी, परंतु उन्होंने सहायता देने से इनकार कर दिया। अंत में ईरानियों ने रूस से संधि करके उससे अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध सहायता प्राप्त की। उस समय काबुल, ग़ज़नी और कंधार का अमीर दोस्त मुहम्मद ख़ाँ विचित्र विपत्ति में फँसा हुआ था। पूर्व में पंजाब का शासक रणजीतसिंह उसके सूबे पर सूबे छीन रहा था और पश्चिम में ईरानी रूसियों की सहायता से हिरात लेकर कंधार की तरफ़ से उसके साम्राज्य के लिए भय का



दोस्त मुहम्मद ख़ाँ

कारण हो रहे थे। दोस्त मुहम्मद खाँ को यह भय था कि कहीं इन दो शत्रुओं के बीच में उसका राज्य न जाता रहे। इस विपत्ति से बचने के लिए दोस्त मुहम्मद खाँ अंग्रेज़ों की मित्रता चाहता था। अंग्रेज़ों को स्वयं भी रूस से भय था। वे नहीं चाहते थे कि रूसी भारत की सीमा के इतने पास आ पहुँचे। परंतु इस विषय में एक और कठिनाई भी थी। दोस्त मुहम्मद खाँ यह चाहता था कि उसको रणजीत-सिंह से पेशावर का इलाक़ा वापस दिलाया जाय, परंतु लार्ड आकलैंड रणजीतसिंह को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। इसलिए जब दोस्त-मुहम्मद खाँ ने ईरानियों और सिक्खों के विरुद्ध अंग्रेज़ों से सहायता माँगी, तब लार्ड आकलैंड ने उत्तर दिया कि हम दूसरी शक्तियों के विषय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। दोस्त मुहम्मद खाँ किसी न किसी प्रकार पेशावर वापस लेना चाहता था। उसने रूसियों और ईरानियों से पत्र-व्यवहार आरंभ कर दिया। लार्ड आकलैंड यह सहन नहीं कर सकता था कि दोस्त मुहम्मद खाँ रूसियों से मित्रता करे। अतः उसने कप्तान बर्नेज़ को दूत बना कर काबुल भेजा। अंग्रेज़ी दूत के काबुल पहुंचने के बाद वहां एक रूसी दूत भी आ गया। इस पर अंग्रेज़ों ने दोस्त मुहम्मद खाँ को लिख भेजा कि वह रूसी दूत को लौटा दे, पर उन्होंने रणजीतसिंह से पेशावर दिलाने के संबंध में कोई प्रतिज्ञा न की। दोस्त मुहम्मद खाँ ने रूसी दूत का आदरपूर्वक स्वागत किया। इस पर कप्तान बर्नेज़ काबुल से भारत को वापस लौट आया। अब लार्ड आकलैंड, शाह शुजा और रणजीतसिंह में एक संधि हुई (जिसे 'Tripartite Treaty' कहते हैं) और यह निर्णय हुआ कि दोस्त मुहम्मद को काबुल की गद्दी से उतार कर शाह शुजा को बिठाया जाय, रणजीतसिंह दर्रा ख़ैबर से एक सहायक सेना काबुल की ओर भेजे और सहायक सेना दर्रा बोलान व क़ंधार के मार्ग से काबुल की ओर प्रस्थान करे। इससे पहले कि अंग्रेज़ और सिक्ख अफ़ग़ानिस्तान पर

चढ़ाई करते, इंगलैंड की सरकार के दबाव से रूसी दूत काबुल से वापस बुला लिया गया था। ईरानी भी हिरात का घेरा छोड़ कर अपने देश को चले गए थे। इस प्रकार सीमांत पर रूसियों की ओर सब आशंका दूर हो चुकी थी, परंतु इन बातों के होते हुए भी लार्ड आकलैंड ने दोस्त मुहम्मद खाँ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अक्तूबर सन १८३८ में अंग्रेज़ी सेना अफ़ग़ानिस्तान को चल पड़ी और सिंध नदी को पार करके दर्रा बोलान में से होती हुई क्वेटा पहुंची और दर्रा खोजक से होकर अप्रैल सन १८३६ में क़ंधार पहुँच गई। उसने क़ंधार पर अधिकार कर लिया। क़ंधार में शाह शुजा दोबारा गद्दी पर बिठाया गया और अंग्रेज़ी सेना ने आगे बढ़ कर ग़ज़नी जीत लिया। दोस्त मुहम्मद खां हार कर बलख़ को भाग गया और १८३६ में शाह शुजा ने काबुल में प्रवेश किया। सर विलियम मेकनाटन काबुल का रेज़ीडेंट नियुक्त हुआ। कुछ समय के बाद अंग्रेज़ी सेना का एक दस्ता भी काबुल से वापस मंगा लिया गया। प्रकट रूप में अंग्रेज़ों को आशातीत सफलता हुई। परंतु शाह शुजा शासन के योग्य न था और अफ़ग़ान उससे अप्रसन्न थे, क्योंकि वह विदेशीय लोगों की सहायता से वापस आया था। दोस्त मुहम्मद खां का लड़का मुहम्मद अकबर खां अभी तक अफ़ग़ानिस्तान में ही था। उसने शाह शुजा की अयोग्यता और प्रजा की अप्रसन्नता से लाभ उठा कर बहुत-से लोगों को अपने साथ मिला लिया। देश में स्थान-स्थान पर झगड़े होने लगे, परंतु दोस्त मुहम्मद खां ने, अपने आपमें सामना करने की ताक़त न पा कर, अपने आपको, अपने बड़े लड़के मुहम्मद अफ़ज़ल खां समेत, अंग्रेज़ों की दया पर छोड़ दिया और वह बेटे समेत नज़रबंद कर कलकत्ता भेज दिया गया। देश में विद्रोह होते रहे। अंत में सन १८४१ के अंत में अंग्रेज़ी रेज़ीडेंट सर विलियम मेकनाटन मार डाला गया। शाह शुजा की भी हत्या कर दी गई और सारी अंग्रेज़ी सेना, जो मुहम्मद अकबर खां से संधि कर के

वापस आ रही थी, अफ़ग़ानिस्तान की पहाड़ियों में मारी गई। केवल एक अंग्रेज़ डाक्टर ब्रायटन बच कर जलालाबाद पहुंचा। अंग्रेज़ स्त्रियाँ और बच्चे मुहम्मद अकबर खाँ के पास बंदी रहे। जब इन रोमाँचकारी घटनाओं की सूचना इंगलैंड पहुँची, तब लार्ड आकलैंड को वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर लार्ड एलनबरा गवर्नर-जनरल बना कर भेजा गया।

लार्ड एलेनबरा १८४२–१८४४

काबुल पर दो वार चढ़ाई

जब लार्ड एलेनबरा भारत पहुँचा, तब अफ़ग़ानिस्तान में अंग्रेज़ी सेना के दो दस्ते थे, जिनको अफ़ग़ानों ने अपने घेरे में ले रखा था। जनरल सेल जलालाबाद के क़िले में घिरा हुआ था। लार्ड एलेनबरा ने आते ही निर्णय किया कि अफ़ग़ानिस्तान में घिरी हुई अंग्रेज़ी सेना की रक्षा का प्रबंध किया जाय और अफ़ग़ानों को उचित दंड देकर अंग्रेज़ी सेना के गौरव की रक्षा की जाय। इस उद्देश्य से जनरल पोलक को जलालाबाद पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई ताकि वहां जाकर जनरल सेल की रक्षा की जा सके। मुहम्मद अकबर खां अंग्रेज़ी सेना का सामना करने के लिए आया, परंतु हार गया और जनरल पोलक ने बढ़कर काबुल पर अधिकार जमा लिया। काबुल का बड़ा बाज़ार जला कर राख कर डाला गया। जनरल नाट भी अब क़ंधार से उत्तर की ओर बढ़ा। उसने ग़ज़नी जीत कर नगर की दीवार बारूद से उड़ा दी और महमूद ग़ज़नवी के मकबरे से वे दरवाज़े उखाड़ लिए जिसके संबंध में कहा जाता है कि वह सोमनाथ के मंदिर से उखाड़ कर ले गया था। इस प्रकार पठानों को उनकी उद्दंडता का यथेष्ट दंड देकर अंग्रेज़ी सेना, शाह शुजा के परिवार को अपने साथ लेकर, वापस चली आई। दोस्त मुहम्मद खाँ को छोड़ दिया गया और वह मरते समय तक अंग्रेज़ों का मित्र बना रहा।

सिंध का अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिलना।

अफ़गानिस्तान की लड़ाई के समय सिंध के अमीरों ने सिंध से अंग्रेज़ी सेना के गुज़रने पर अप्रसन्नता प्रकट की थी और सिंध के रेज़ीडेंट जनरल ऑटरम ने इनमें से कुछ अमीरों के संबंध में शिकायतें भी की थी। इस पर सर चार्लस नेपियर को जाँच करने के लिए सिंध भेजा गया। उसने मामले की पड़ताल करके सिंध के अमीरों को दोषी ठहराया और यह प्रस्ताव पेश किया कि सिंध में भविष्य के लिए एक अंग्रेज़ी सहायक सेना रखी जाय और इस सेना के खर्च के लिए, सिंध का कुछ भाग अमीरों से ले लिया जाय। इस पर सिंध के अमीर और उनके बलोच सरदार बहुत बिगड़े। १५ फर्वरी सन १८४३ में बलोचियों ने रेज़ीडेंसी पर चढ़ाई कर दी। उन्हें चार्लस नेपियर ने मियानी और हैदराबाद के पास दो बार हराया। सिंध के अमीरों को बंदी करके बनारस भेजा गया और खैरपुर के अतिरिक्त सारा इलाक़ा अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला लिया गया। सर चार्लस नेपियर सिंध का पहला गवर्नर नियुक्त हुआ।

ग्वालियर से झगड़ा

उन्हीं दिनों में जनकोजी सिंधिया का देहांत हो गया और उसकी विधवा ताराबाई ने एक लड़का गोद ले लिया, जिसे सिंहासन पर बिठाया गया। अंग्रेज़ों की स्वीकृति से एक अंग्रेज़ मंत्री रखा गया, परंतु रानी इससे अप्रसन्न हो गई और उसे मंत्री-पद से हटा दिया गया। बल्कि वह अंग्रेज़ों से लड़ने को तैयार हो गई। इस समय ग्वालियर में चालीस हज़ार सैनिक थे। पंजाब में भी महाराजा शेरसिंह के मारे जाने के बाद देश में अशांति फैली हुई थी और लार्ड एलनबरा को यह आशंका थी कि सिक्खों से कहीं लड़ाई न छिड़ जाय। इन परिस्थितियों में ग्वालियर में इतनी सेना का होना अंग्रेज़ी राज्य के लिए हितकारी न था। इसलिए सर ह्यू गफ़ के नेतृत्व में एक

सेना ग्वालियर भेजी गई। सर ह्यू गफ़ ने ताराबाई की सेना को महाराजपुर और जनरल ग्रे ने पानियार पर हराया। इस लड़ाई के बाद सिंधिया की सेना घटा कर केवल नौ हज़ार रहने दी गई, और सहायक सेना के रूप में दस हज़ार की एक अंग्रेज़ी सेना रखी गई। रानी के हाथ से रियासत का प्रबंध छीन लिया गया और एक कौंसिल बना कर उसे रियासत का प्रबंध सौंपा गया। परंतु कंपनी के डायरेक्टर एलेनबरा की सिंध की विजय से अप्रसन्न थे। इसलिए उसको भी सन् १८४४ में वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर लार्ड हार्डिंग गवर्नर-जनरल हुआ।

प्रश्न

१. संक्षेप से पहली अफ़ग़ान लड़ाई के कारण, मुख्य घटनायें तथा परिणाम लिखो। (मैट्रिक १९३९)

२. पहली अफ़ग़ान लड़ाई पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९४०)

३. जिन परिस्थितियों में सन् १८३९ में अफ़ग़ानिस्तान के विषय में अंग्रेज़ों ने हस्तक्षेप किया, उन पर नोट लिखो।

४. सिंध प्रांत के अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिलाये जाने पर नोट लिखो।

तेरहवाँ अध्याय

लार्ड हार्डिंग पहला १८४४—१८४८

रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पंजाब

रणजीतसिंह २१ जुलाई सन् १८३९ में परलोक सुधार चुका था। इसके बाद पंजाब में बहुत गड़बड़ और अशांति रही। सिंहासन पर कोई अच्छा शासक न बैठा। उसके लड़कों को एक-एक करके

की स्थिति

सिक्ख सरदारों ने मार दिया। राज्य केवल सेना की पंचायतों के हाथ में रह गया था। अंत में रणजीतसिंह के अल्प-वयस्क पुत्र दिलीपसिंह को, जो पाँच वर्ष का था, गद्दी पर बिठाया गया और उसकी माता रानी जिंदाँ राज्य करने लगी। लालसिंह मंत्री बना। रानी जिंदाँ और मंत्री लालसिंह ने अपने आपको उद्दंड सेना से बचाने के लिए उसे अंग्रेज़ों के इलाक़े पर चढ़ाई करने को उकसाया। अतः दिसंबर सन् १८४५ में ६० हज़ार सिक्खों ने सतलज पार करके अंग्रेज़ी राज्य पर आक्रमण कर दिया। यहाँ से सिक्खों की अंग्रेज़ों के साथ लड़ाई शुरु हो गई।

सिक्खों और अंग्रेज़ों की पहली लड़ाई १८४५—४६

लार्ड हार्डिंग ने सिक्खों के आक्रमण करने पर सतलज के दक्षिण में दिलीपसिंह के इलाक़े को तत्काल अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लेने की घोषणा कर दी और ह्यू गफ़ सेना लेकर सिक्खों का सामना करने के लिए बढ़ा। १८ दिसंबर सन् १८४५ में मुदकी पर पहली लड़ाई हुई। अंग्रेज़ों का भारत में इतनी अच्छी सेना से कभी सामना न हुआ था। घमसान युद्ध हुआ और जीत अंग्रेजों की रही। इसके तीन दिन बाद २१ दिसंबर सन् १८४५ में फ़ीरोज़शाह पर लड़ाई हुई। यह लड़ाई दो दिन हुई और बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। लगभग अढ़ाई हज़ार अंग्रेज़ घायल हुए। सिक्खों ने अंग्रेज़ों के दाँत खट्टे कर दिए। अंग्रेज़ी सेना ने लौट जाने का विचार कर लिया, परंतु लार्ड ह्यू गफ़ सहमत न हुआ। सो युद्ध जारी रहा। अंत में सिक्ख हारे। २८ जनवरी सन् १८४६ में सर हैरी स्मिथ ने सिक्खों को अलीवाल के रणक्षेत्र पर हराया। सिक्ख सतलज के पार लौट जाने को विवश हो गए। सिक्ख अब युद्ध के लिए ख़ूब तैयारी करने लगे। फ़ीरोज़पुर के पूर्व सँभराओं में अड्डा बनाया गया। सतलज पर नावों का पुल तैयार किया गया। १० फ़रवरी सन् १८४६ में फिर लड़ाई

शिक्षा

लार्ड डलहौज़ी अभी शिक्षा की समस्या पर विचार कर ही रहा था कि सर चार्लस वुड ने, जो बाद को लार्ड हेलीफ़ैक्स के नाम से प्रसिद्ध हुआ, और जिसका पोता लार्ड अरविन भारत का वाइसराय हुआ, एक रिपोर्ट भेजी जिसमें सारे भारतवर्ष के जन-साधारण की शिक्षा के संबंध में प्रस्ताव दिए गए थे। इस रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक प्रांत में एक शिक्षा-विभाग बनाया गया और सरकार की ओर से स्कूल और कालेज खोले गए। हर जिले में लोगों की मातृ-भाषा में शिक्षा देने का आदेश दिया गया और प्राइवेट संस्थाओं को भी सरकार की ओर से आर्थिक सहायता मिलने लगी। लार्ड डलहौज़ी ने इस रिपोर्ट के अनुसार तत्काल कारवाही आरंभ कर दी।

चार्टर एक्ट १८५३

सन १८५३ में ईस्ट इंडिया कंपनी के आज्ञा-पत्र का अंतिम बार संशोधन किया गया। परंतु इस आज्ञा-पत्र की कोई अवधि नियत न की गई, बल्कि पार्लियामेंट को यह अधिकार हो गया कि वह जब चाहे कंपनी के शासन को समाप्त कर दे। परंतु भारत में शासन-प्रणाली प्रायः वही रही, जो १८३३ में स्थापित की गई थी। हाँ, अब क़ानून बनाने के लिए गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ा कर बारह कर दी गई। एक और परिवर्तन यह किया गया कि अब तक भारत का गवर्नर-जनरल बंगाल के गवर्नर का कर्तव्य भी पालन करता था, परंतु लार्ड डलहौज़ी के शासन-काल में साम्राज्य में नई रियासतों के मिल जाने से गवर्नर-जनरल का काम बढ़ गया। इसलिए अब यह निर्णय हुआ कि भारत के गवर्नर-जनरल को बंगाल, बिहार, उड़ीसा की गवर्नरी से मुक्त करके इन प्रांतों के लिए एक लेफ़्टिनेन्ट-गवर्नर नियुक्त किया जाय। इस अवसर पर कंपनी के डायरेक्टरों से सिविल कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार भी ले लिया गया और इसके बाद

भारत की सिविल सर्विस में नियुक्तियाँ मुकाबले की परीक्षा (Competitive examinations) द्वारा होने लगीं ।

प्रश्न

१. संक्षेप में सिक्खों की पहली लड़ाई के कारण, मुख्य घटनाएँ तथा परिणाम लिखो। (मैट्रिक १९३७)

२. संक्षेप से सिक्खों की दूसरी लड़ाई के कारण, मुख्य घटनाएँ तथा परिणाम लिखो। (मैट्रिक १९३८)

३. संक्षेप से बर्मा की दूसरी लड़ाई के कारण, मुख्य घटनाएँ तथा परिणाम लिखो। (मैट्रिक १९३९)

४. लैप्स नीति पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९४१)

५. लार्ड डलहौज़ी के राज्य-शासन का वर्णन करो।
(मैट्रिक १९४२)

६. सिक्खों की दूसरी लड़ाई के कारण और परिणाम लिखो।
(भूषण १९३८)

७. बर्मा की दूसरी लड़ाई के कारण लिखो। (भूषण १९३९; १९४१)

८. चार्टर एक्ट १८५३ पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९४०)

९. लार्ड डलहौज़ी के कामों की महत्ता बताओ। (भूषण १९४१)

१०. लैप्स नीति से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? लार्ड डलहौज़ी ने इस नीति का उपयोग किस भाँति किया ? अवध किस भाँति अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला ? लार्ड डलहौज़ी के शासन-काल की घटनाएँ लिखो।

११. गुजरात की लड़ाई भारतवर्ष के इतिहास में क्यों प्रसिद्ध है ?

१२. शामसिंह अटारी वाले पर नोट लिखो।

१३. तेजसिंह और रानी जिन्दाँ ने भारत के इतिहास में क्या भाग लिया ?

१४. दीवान मूलराज चिलियाँवाला पर नोट लिखो।

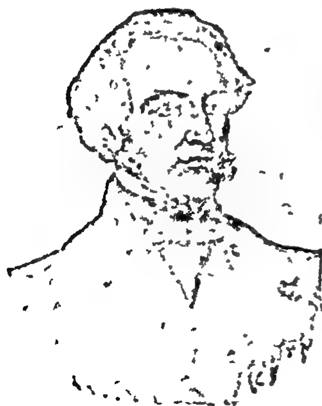
१५ लार्ड डलहौज़ी के शासन-काल में कौन-से सामाजिक क़ानून बने ?

चौदहवाँ अध्याय

लार्ड कैनिंग १८५६—१८५८

सैन्य-विद्रोह के कारण

जब लार्ड कैनिंग भारतवर्ष पहुँचा तब चीन और ईरान से अंग्रेज़ों का युद्ध छिड़ा हुआ था और इगलैंड की सरकार ने भारत-सरकार से अंग्रेज़ी सेना के कुछ दस्ते माँग लिए थे। ईरानियों ने हिरात पर आक्रमण करके घेरा डाल लिया था। इस पर अंग्रेज़ों ने ईरान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। १८५७ के आरंभ में ईरानियों से संधि हो गई और उन्होंने भविष्य के लिए निश्चय दिलाया कि वे फिर कभी हिरात पर चढ़ाई न करेंगे। दोस्त मुहम्मद खां इस सहायता के लिए अंग्रेज़ों का बहुत आभारी था और विद्रोह के दिनों में उसकी मित्रता ने अंग्रेज़ों को बहुत लाभ पहुँचाया। विद्रोह के दिनों में पंजाब में अंग्रेज़ी सेना बिल्कुल न थी और यदि दोस्त मुहम्मद चाहता तो वह इस अवसर पर पेशावर सहज में ले सकता था। परंतु सैन्य-विद्रोह (ग़दर) के दिनों में वह चुप रहा और उसने अंग्रेज़ी इलाक़े पर कोई चढ़ाई नहीं की। ईरानियों से युद्ध समाप्त होने के कुछ ही महीने



लार्ड कैनिंग

रहेगा और हिंदू-मुसलमान धर्मों का लेश-मात्र भी ध्यान न रखा जायगा। १८२९ में सती की प्रथा को रोक दिया गया था। रेल-गाड़ी ने ब्राह्मण और शूद्र को बराबर-बराबर ला बिठाया था। तार-विभाग उनके विचार में एक विचित्र जादू था। पश्चिमी शल्य-प्रणाली (surgery) हिंदुओं के धार्मिक सिद्धांतों के सर्वथा विरुद्ध समझी जाती थी। इसके अतिरिक्त १८५८ में यह क़ानून पास हुआ कि हिंदू विधवाओं को दोबारा विवाह करने की अनुमति होगी। १८५० में यह क़ानून बना कि यदि कोई व्यक्ति अपने धर्म से गिर जायगा, अथवा अपनी बिरादरी से निकाला जायगा, तो भी अपने वंश की जायदाद में उत्तराधिकारी होने का उसका अधिकार सुरक्षित रहेगा। इससे लोग यह समझने लगे थे कि ईसाई धर्म के प्रचार के लिए जगह बनाई जा रही है।

(४) सब से बड़ा कारण यह था कि भारतीय सेना कुछ समय से सरकार से नाराज़ थी। उत्तरीय-भारत को सेनाओं में अधिकतर ब्राह्मण और राजपूत जैसी उच्च जातियों के ब्राह्मण भरती होते थे। १८२४ में जब बर्मा की पहली लड़ाई छिड़ी, तब उनको कालापानी पार करने की आज्ञा दी गई और जब उन्होंने यह आज्ञा-पालन करने से इनकार कर दिया, तब उन्हें गोली से उड़ा दिया गया। अफ़ग़ानिस्तान की पहली लड़ाई में उन्होंने सिंध नदी को पार करने में आना-कानी की थी। सिंध की लड़ाई में भी वे सिंध पार के लड़ने से हिचकचाते थे। जब १८५२ में बर्मा की दूसरी लड़ाई आरंभ हुई तब इस बार भी उन्होंने कालापानी पार करना स्वीकार न किया। अंत में एक ऐसा क़ानून बनाया गया कि भविष्य में किसी ऐसे व्यक्ति को सेना में भरती न किया जायगा, जो किसी जगह लड़ाई में जाने से इनकार करे। इस नियम से प्राचीन और कट्टर विचारों की ऊँची जातियों के हिंदू सेना की नौकरी से वंचित रह गए। इस क़ानून के बनने के कुछ समय बाद ही यह आदेश दिया गया कि नई तरह की इन्फ़ील्ड बंदूक के

कारतूसों के चढ़ाने में चर्बी प्रयोग में लाई जाय। इस आज्ञा से सारी भारतीय सेना के हिंदू और मुसलमान दोनों बिगड़ उठे। उन्होंने इस चर्बी का प्रयोग करने से इनकार कर दिया। जब सिपाहियों को आज्ञा-भंग करने का दंड दिया गया, तब उन्होंने विद्रोह कर दिया। कई एक छावनियों में भारतीय सैनिक बिगड़ उठे और सैन्य-विद्रोह आरंभ हो गया।

मेरठ

सबसे पहले सैन्य-विद्रोह, अर्थात् गदर, मेरठ छावनी में आरंभ हुआ। १० मई १८५७ में मेरठ छावनी के ८५ सिपाहियों को आज्ञा-भंग के अभियोग में दंड दिया गया और उनकी वर्दियां उतार कर उनको जेलखाने में भेज दिया गया। शेष भारतीय सिपाहियों ने जेलखाने पर धावा बोल दिया। बंदी सैनिकों को छोड़ दिया गया। अंग्रेज़ अधिकारियों की हत्या करके सारी भारतीय सेना दिल्ली की ओर बढ़ी। वहाँ की भारतीय सेना भी उनसे मिल गई। बूढ़ा बहादुरशाह, जो इस समय ८० बरस का था, फिर से भारत-सम्राट् बनाया गया और दिल्ली के सब अंग्रेज़ों का वध किया गया। सहायता के लिए चारों ओर पत्र लिखे गए। भिन्न-भिन्न स्थानों पर भारतीय सेनाएँ अपनी-अपनी छावनियों में अंग्रेज़ों की हत्या करके दिल्ली की ओर बढ़ने लगीं।

लखनऊ

लखनऊ में चीफ़ कमिश्नर और उनके अधीन अंग्रेज़ी अफ़सरों और दूसरे अंग्रेज़ों को घेर लिया गया। अंग्रेज़ों ने रेज़ीडेन्सी में शरण ली। सर हेनरी लारेन्स लड़ता हुआ ४ जुलाई को मारा गया। रेज़ीडेन्सी की सेना धैर्यपूर्वक शत्रुओं का सामना करती रही।

कानपुर में नाना साहब ने, जो पेशवा बाजीराव का दत्तक पुत्र

तरफ़ से लार्ड कैंनिंग पहला वाइसराय नियुक्त हुआ। १ नवंबर १८५८ के दिन इलाहाबाद से नई शासन-पद्धति की घोषणा की गई।

१८५८ में भारत की राजनीतिक अवस्था पर विहंगम दृष्टि

१८०५ में लार्ड वेलेज़ली की विजयों से लेकर १८५७ के सैन्य-विद्रोह तक भारत का इतिहास देखने से पता चलता है कि इस आधी शताब्दी में अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी सारे भारतवर्ष की स्वामिनी हो गई थी। हिंदू-कुश पर्वत के पार आक्सस नदी से लेकर सुदूर दक्षिण में रास अंतरीप तक और पूर्व में तनासरम और स्याम से लेकर पश्चिम में सीस्तान तक समस्त भारत-महाप्रदेश अंग्रेज़ों के चक्रवर्ती साम्राज्य के अधीन हो चुका था। मराठों की हार के बाद जितने युद्ध हुए वे सब अंग्रेज़ी इलाक़े की सीमाओं पर हुए। इसलिए देश के अंदर सर्वथा शांति का राज्य रहा। जनता में अंग्रेज़ी शिक्षा, पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति तथा यूरोपियन विचार फैलने लगे। शनैः शनैः प्राचीन प्रथाएँ और अंध विश्वास उठने लगे। जात-पाँत और धर्म इत्यादि की आलोचना खुले रूप से होने लगी। परंतु भारत जैसे अनुदार देश में सभ्यता तथा विचारों में तेज़ गति से आने वाली क्रांति कभी सुखकारी न हो सकती थी। पुरानी लीक पर चलने वाले कट्टर भारतीय कब नये विचारों और नूतन प्रथाओं को सुगमता से अपना सकते थे। इसलिए जब उन्होंने यह देखा कि सरकार भी नए विचारों के पालन में पुराने विचारों का ध्यान नहीं रखती तब उन्होंने अप्रसन्न होकर विद्रोह कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि भविष्य में सरकार ने धार्मिक और सामाजिक विषयों में, प्रजा का परामर्श लिए बिना, हस्तक्षेप करना बंद कर दिया। भारत में भी अब ऐसे नेता उत्पन्न हो चुके थे, जो आधुनिक युग में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का ध्यान रखते हुए देश को प्रगति की ओर ले जा सकते थे। राजा राम मोहन राय,

सर सैय्यद अहमद, स्वामी दयानंद, इन सब ने पूर्वीय सभ्यता को पश्चिमी शिक्षा में पले हुए लोगों में लोक-प्रिय बनाने का काम अपने हाथ में लिया। १८५७ के विद्रोह का प्रभाव भारत सरकार पर यह पड़ा कि भविष्य के लिए कंपनी के शासन का अंत हुआ और भारतवर्ष में इंगलैंड के सम्राट् का राज्य प्रारंभ हुआ। भारतीय सेना का अंश बढ़ा दिया गया और तोपखाना अधिकतर अंग्रेज़ों के हाथ में रखा गया। अब इस नए युग में हार-जीत के दिन बीत चुके थे। सरकार का कर्तव्य अब ज़्यादातर जनता की आर्थिक, नैतिक, और मानसिक उन्नति की ओर ध्यान देना और सड़कों आदि का बनाना रह गया था।

प्रश्न

१. भारतवर्ष का चित्र खेंचकर दिखाओ कि सन् १७६८ से लेकर १८५७ तक अँगरेज़ों ने कौन-कौन-से प्रदेश हाथ में ले लिये। (मैट्रिक १६३८)

२. १८५७ के विद्रोह के कारण, मुख्य घटनाएँ तथा परिणामों का सावधानी से वर्णन करो। (मैट्रिक १६४०)

३. १८५७ के गदर के कारण लिखो और इसका भारतवर्ष के इतिहास पर क्या परिणाम हुआ? (भूषण १६३६)

४. अंग्रेज़ी शासन ने भारत में (१) जान-माल की रक्षा के लिए (२) आने-जाने की सुगमता के लिए (३) देश को अकाल आदि से बचाने के लिए (४) शिक्षा के लिए (५) और भारतीयों की उन्नति के लिए क्या किया?

५. भारत का शासन कंपनी से छिन कर इंगलैंड के सम्राट् के हाथ कैसे आया? इन दोनों अवस्थाओं में भारत की दशा की तुलना करो?

ब्रिटिश-शासन के प्रबंध में भारत

प्रबंध-प्रणाली में सुधार तथा विदेशों से संबंध

१८५८—१८८०

पंद्रहवाँ अध्याय

लार्ड कैनिंग १८५८–१८६२

प्रबंध संबंधी सुधार

सैन्य-विद्रोह के पश्चात् शांति स्थापित होने पर देश की प्रबंध-प्रणाली में कई परिवर्तन किए गए। विद्रोह का आरंभ दिल्ली से हुआ था, इसलिए दंड-स्वरूप दिल्ली प्रांत को दो भागों में बाँटा गया। जमुना नदी के पूर्वीय ज़िले तो आगरा प्रांत के साथ मिला दिए गए और इस नदी के पश्चिमी ज़िले पंजाब में। अब पंजाब के शासक को चीफ़ कमिश्नर के बदले लेफ़्टिनेंट गवर्नर की उपाधि दी गई।

अदालतें

अब तक देश में दो प्रकार की बड़ी अदालतें थीं। एक तो कंपनी द्वारा स्थापित की गई दीवानी और फ़ौजदारी की अदालतें और दूसरी इंगलैंड के सम्राट् की तरफ़ से किया गया सुप्रीम कोर्ट। अब सारा देश सम्राट् के अधीन हो गया, इसलिए इन दो प्रकार की अदालतों की आवश्यकता नहीं थी। इन दोनों को मिलाकर १८६१ में प्रत्येक प्रांत में पार्लमेंटानुसार हाईकोर्ट स्थापित किए गए। इन अदालतों के लिए नए नियम बनाए गए। भारतीय दंड-विधान, ज़ाब्ता दीवानी इत्यादि क़ानून पास किए गए। बंगाल, बिहार, आगरा और नागपुर के काश्तकारों के लिए १८५९ में एक क़ानून बनाया गया (Rent Act), जिसमें काश्तकारों के अधिकारों की रक्षा की गई। इस क़ानून के

अनुसार वे काश्तकार जो बारह वर्ष से एक ही भूमि पर काश्त कर रहे थे, पैत्रिक काश्तकार मान लिए गए और अब अदालत की आज्ञा के बिना ज़मींदार उनका लगान बढ़ा नहीं सकते थे।

नए क़ानून

हम पहले बता चुके हैं कि १८५७ के विद्रोह का एक कारण यह भी था कि कुछ क़ानून ऐसे बनाए गए थे जिनका संबंध धर्म से भी था। सर सैयद अहमद का, जो उच्च कोटि के तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक नेता था, यह विचार था कि भारत जैसे देश में लोगों की इच्छा के विरुद्ध कोई क़ानून नहीं बनना चाहिए। अतः यह निर्णय किया गया कि भविष्य में सब कौंसिलों में भारतीय भी सदस्य बनाए जाएँ ताकि क़ानूनों के बनते समय भारतीयों के विचारों का भी पता चल सके।

कौंसिल एक्ट

१८६१ में एक कौंसिल-एक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार कौंसिल के सदस्यों की संख्या व्यवस्थापक कौंसिल के सदस्यों के अतिरिक्त १२ नियत हुई और यह निर्णय हुआ कि इनमें से कम से कम आधे सदस्य ग़ैर-सरकारी हों। अब इन ग़ैर-सरकारी सदस्यों में भारतीय भी नियुक्त हो सकते थे।

आर्थिक सुधार

विद्रोह के बाद सरकार को सबसे बड़ी कठिनाई, जो सामना करनी पड़ी, आर्थिक दशा थी। विद्रोह के दिनों में सरकार का बहुत रुपया खर्च हो चुका था और सरकार को इतना ऋण देना हो गया था कि सूद देने में भी कठिनाई हो रही थी। चार वर्ष में भी १८ करोड़ का घाटा पड़ा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए इंगलैंड से सर जेम्स विलसन और सेमुएल लैंग को भेजा गया। इन्होंने यहाँ आकर बजट पेश करने की रीति चलाई। बाहर से आने वाली और यहाँ से जाने वाली वस्तुओं

पर कर (Import and Export duty) बढ़ा दिया गया। नमक का कर भी बढ़ाया गया। करैंसी नोट ज़ारी हुए और देश में पहली बार इनकम टैक्स लगाया गया। खर्च में कमी की गई। तब कहीं १८६२ में आमदन और खर्च बराबर हुए।

विश्वविद्यालयों की स्थापना

विद्रोह के दिनों में लार्ड कैनिंग ने कलकत्ता, मद्रास और बंबई में उच्च शिक्षा के लिए एक-एक विश्वविद्यालय खोला। इन विश्वविद्यालयों से भारतीय युवक ग्रेजुएट हो कर निकलने लगे और आधुनिक युग का शिक्षित समाज बनना आरंभ हुआ। इसके द्वारा देश में पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का आविर्भाव हुआ। इन्हीं दिनों में अंग्रेज़ धनाधीशों ने भारत में आकर चाय और काहवा की खेती के लिए सरकार से ज़मीनें प्राप्त कीं।

कैनिंग का स्वभाव

१८६२ में लार्ड कैनिंग भारतवर्ष से चला गया। उसको विद्रोह के दिनों में और इसके बाद इतने परिश्रम से काम करना पड़ा था कि उसका स्वास्थ्य बिलकुल बिगड़ गया था। वह भारत से १८६२ में चला था, परंतु इंगलैंड में पहुँचने के कुछ महीने बाद ही उसका देहांत हो गया। वह भारत का पहला वाइसराय (राजा का प्रतिनिधि) था। वह बड़े दयालु स्वभाव का था। विद्रोह के बाद कुछ अंग्रेज़ चाहते थे कि भारतीयों से बदला लिया जाय, परंतु उसने उनकी एक न सुनी। इसलिए अप्रसन्न होकर वे लोग उसे दयालु कैनिंग (Clemency Canning) के नाम से पुकारते थे। उसके बाद लार्ड एलगिन भारतवर्ष का वाइसराय नियुक्त हुआ।

लार्ड एलगिन १८६२-१८६३

लार्ड एलगिन ने मार्च १८६२ में कार्य-भार लिया, परंतु दिसंबर १८६३ में धर्मशाला में उसकी मृत्यु हो गई।

वहाबियों का

इसके शासन-काल में केवल एक घटना हो

विद्रोह

उल्लेखनीय है। वह यह, कि पेशावर के उत्तर में वहाबियों ने विद्रोह कर दिया था, १८६२ में उनके विरुद्ध चढ़ाई की गई, परंतु अभी सेना सफल होकर वापस न लौटी थी कि वाइसराय की मृत्यु होगई और उसके स्थान पर लार्ड लारेंस, जो पंजाब का शासक रह चुका था, वाइसराय नियुक्त हो कर आया।

लार्ड लारेंस १८६४-१८६९

लार्ड लारेंस के आने के कुछ समय बाद ही वहावियों को हरा दिया गया और सीमांत पर शांति स्थापित हो गई।

सीमा-प्रांत की नीति

लार्ड लारेंस साम्राज्य विस्तार में आगे बढ़ने की नीति के विरुद्ध था। वह न तो अफ़ग़ानिस्तान के अंतरीय मामलों में हस्तक्षेप करना चाहता था और न ही सीमा-प्रांत के क़बीलों की स्वतंत्रता में बाधा डालना चाहता था। परंतु, जैसा कि विद्वानों का मत है, इस बात के साथ ही वह पीछे हट कर सिंध नदी को ही अंग्रेज़ी राज्य की सीमा भी बनाना नहीं चाहता था। उसकी नीति यह थी कि सीमांत पर अंग्रेज़ी इलाक़े में सेना सदैव तयार रहनी चाहिए और यदि सरहद्दी क़बीले (जातियां) अथवा कोई और अंग्रेज़ी इलाक़े में लूट-मार करें तो उनको उचित दंड दिया जाय। परंतु विदेशीय इलाक़ों पर अधिकार कभी न जमाया जाय। इस नीति को प्रायः 'मास्टरली इनएक्टिविटी' (Masterly Inactivity) अर्थात् 'अद्वितीय आलस की नीति' भी कहा जाता है। इसी नीति के अनुसार जब १८६३ में काबुल का अमीर दोस्त मुहम्मद खां मरा, तब उसके लड़कों में गद्दी के लिए झगड़ा होने लगा। लार्ड लारेंस ने अफ़ग़ानिस्तान के मामले में कोई हस्तक्षेप न किया। जब शेरअली गद्दी पर बैठा तब उसने उसे ही अफ़ग़ानिस्तान का अमीर मान लिया और जब उसके बड़े भाई मुहम्मद अफ़ज़ल ने उसे काबुल और कंधार के इलाक़ों से निकाल कर इन इलाक़ों पर अधिकार जमा लिया तब लार्ड


लार्ड मेयो

सहायता करेगी। दूसरी ओर रूस ने भी इंगलैंड को निश्चय दिलाया कि वह अफ़ग़ानिस्तान को अपने साम्राज्य में मिलाने की इच्छा नहीं रखता।

आर्थिक सुधार

अंतरीय विषयों में लार्ड मेयो के शासन-काल में सब से महत्व-पूर्ण काम यह हुआ कि उसने प्रांतीय सरकारों को कुछ स्वतंत्रता दे दी। लार्ड मेयो से पहले रुपये-पैसे के सारे विभाग केंद्रीय सरकार ने अपने हाथ में रखे हुये थे और प्रांतीय सरकारों को खर्च करने के लिए छोटी से छोटी रक़म की अनुमति भी भारत-सरकार से लेनी पड़ती थी। भारत-सरकार को स्थानीय परिस्थितियों का अधिक ज्ञान न होता था। इसका परिणाम प्रायः यह होता था कि जो प्रांतीय सरकार अधिक झगड़ा करती थी, वह दूसरों से अधिक मात्रा में रुपया ले जाती थी। इस रीति के अनुसार भारत-सरकार को घाटे का मुँह देखना पड़ता था और प्रांतीय सरकारें खर्च के संबंध में कोई उत्तरदायित्व अनुभव न करती थीं। लार्ड मेयो ने इस पुरानी रीति को हटा कर प्रत्येक प्रांतीय सरकार को धन की एक निश्चित रक़म देकर उनकी सीमा के अंदर-अंदर आमदन और खर्च का उत्तरदायी बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ-एक मामलों का निर्णय, जो पहले केंद्रीय सरकार करती थी, अब प्रांतीय सरकार करने लगी।

अपने लड़के के विरुद्ध ही संदेह उत्पन्न हो गया और उसने उसे क़ैद कर लिया और अपने दूसरे लड़के जान मुहम्मद को गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। लार्ड नार्थ ब्रुक ने इस संबंध में उसे एक बड़ी कड़ी चिट्ठी लिखी और उसमें उसको ख़ूब लताड़ा। परंतु दो वर्ष बाद इंगलैंड में उदार-दल हार गया और अनुदार-दल का ज़ोर बढ़ गया। इस दल का विचार था कि रूस के विरुद्ध अफ़ग़ानिस्तान से संधि करनी चाहिए। इसलिए इस संबंध में लार्ड नार्थ ब्रुक को पत्र लिखा गया कि वह शेरअली से संधि करके काबुल में एक अंग्रेज़ी दूत भेजे। परंतु शेरअली अब अंग्रेज़ों से अप्रसन्न था। वह किसी प्रकार भी अंग्रेज़ी दूत को काबुल में रहने की आज्ञा न दे सकता था। भारत-सचिव लार्ड सैलिसबरी ने उससे अनुरोध किया कि काबुल एक अंग्रेज़ दूत अवश्य नियुक्त किया जाय। लार्ड नार्थ ब्रुक दो ही वर्ष पहले शेरअली से कह चुका था कि रूसियों की ओर से उसे तनिक भी भय नहीं। अब वह शेरअली को किस मुँह से कह सकता था कि अब रूसियों की ओर से भय इतना बढ़ गया है कि अफ़ग़ानिस्तान में अंग्रेज़ दूत की उपस्थिति अनिवार्य हो गई है। इसी लिए अंत में उसने १८७६ में त्याग-पत्र दे दिया और इंगलैंड वापस चला गया।

गायकवाड़

लार्ड नार्थ ब्रुक के शासन-काल में गायकवाड़-बड़ौदा के राजा मल्हारराव को रियासत में कुप्रबंध के कारण सिंहासन से उतार दिया गया और उसके स्थान पर राजवंश में से एक बच्चे को सिंहासन पर

वाइसराय के शासन-काल में हुआ। इस कालेज में राजा-महाराजाओं के लड़कों को शिक्षा देने का प्रबंध किया गया।

सर सैयद अहमद

सर सैयद अहमद ने विद्रोह के दिनों में अंग्रेज़ों की बड़ी सहायता की। बदले में अंग्रेज़ों ने भी उन पर कृपा-दृष्टि रखी। सरकार में उनकी मान-प्रतिष्ठा बढ़ गई। उन्होंने कई निरपराध भारतीयों को दंड मिलने से बचाया। उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं, जिनमें से विद्रोह की वर्णनात्मक पुस्तक अधिक प्रसिद्ध है। उनका सब से महत्वपूर्ण कार्य अलीगढ़ में एम० ए० ओ० कालेज का खोलना है। इसका उद्देश्य मुसलमानों को अंग्रेज़ी शिक्षा देने का था। यही कालेज बाद में अलीगढ़ यूनिवर्सिटी बन गया।

स्वामी दयानंद

इसी वाइसराय के शासन-काल में स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य-समाज की नींव रखी। स्वामी जी १८२४ में गुजरात-काठियावाड़ में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने स्वामी विरजानंद से शिक्षा पाई थी। उनका यह निश्चय था कि हिंदुओं के चारों वेद ही संसार की सब विद्याओं का स्रोत हैं और यदि पुराणों की शिक्षा को छोड़ कर केवल वेदों का ही अध्ययन किया जाय, तो उनकी शिक्षा से हिंदू पूरी उन्नति पा सकते हैं। स्वामी जी कर्म से ही जाति को मानते थे, न कि जन्म से, और वे मूर्ति-पूजा के विरोधी थे।

अकाल

सन १८७८ में दक्षिण में बड़े ज़ोर का अकाल पड़ा। तीन वर्ष सूखा पड़ा था। मध्य-प्रदेश और संयुक्त-प्रांत में अन्न की कमी थी। ५० लाख लोग भूखों मर गये। सरकार ने काफ़ी रुपया खर्च किया और प्रजा का दुःख कम किया। अकाल के विषयों पर जाँच करने के लिए एक कमेटी बनाई गई। सर रिचर्ड स्ट्रेची इसका प्रधान था। कमेटी ने निश्चय किया कि रेल और नहरें बनाई जायँ, जिससे लोग आजीविका

दर्रा खोजक तक का इलाक़ा अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला लिया गया। मि० लूई कैवेगनरी को काबुल का रेज़ीडेंट बनाया गया। परंतु इसके कुछ दिनों बाद ही वह अपने अधीन अफ़सरों समेत मार डाला गया। अफ़ग़ान इस पर किसी प्रकार भी सहमत न होते थे कि उनके देश में एक अंग्रेज़ रेज़ीडेंट बन कर रहे। इस पर फिर युद्ध आरंभ हुआ। जनरल स्टूअर्ट और जनरल राबर्टस ने काबुल पर चढ़ाई कर दी। याक़ूब खां ने अपने को अंग्रेज़ों के समर्पण कर दिया और काबुल की गद्दी का अधिकार छोड़ कर देहरादून में रहने लगा। यहां उसे भारत-सरकार की ओर से पेनशन मिलने लगी। अंग्रेज़ों ने शेरअली के बड़े भाई मुहम्मद अफ़ज़ल के लड़के अब्दुल रहमान को अमीर मान लिया। परंतु याक़ूब खां के छोटे भाई अयूब खां ने लड़ाई जारी रखी। इस समय लार्ड लिटन त्याग-पत्र देकर इंगलैंड वापस चला गया। अंत में अयूब खां हार कर अंग्रेज़ों के अधीन हुआ और अंग्रेज़ों ने उसकी भी पेनशन बांध दी। पहले वह रावलपिंडी रहने लगा, फिर उसने लाहौर रहना आरंभ कर दिया।

अमीर अब्दुल रहमान

अमीर अब्दुल रहमान को क़ंधार और हेरात भी दे दिया गया और उसने अफ़ग़ानिस्तान में एक सुव्यवस्थित साम्राज्य स्थापित किया। वह १९०१ तक शासन करता रहा और उसके शासन-काल में अफ़ग़ानिस्तान में बिलकुल शांति रही।

लार्ड लिटन के बाद लार्ड रिपन भारत का वाइसराय नियुक्त हुआ।

३. दयानंद पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १६३६)

४. दूसरी अफ़ग़ान लड़ाई पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १६४३)

५. विद्रोह के पश्चात् प्रांतों की सीमाओं में क्या-क्या परिवर्तन किए गए और उनका क्या परिणाम निकला ?

६. भारत के आर्थिक प्रबंध में लार्ड मेयो ने क्या सुधार किए ?

७. सन् १८५८ से १८८० तक भारत की अदालतों और पुलिस विभाग में क्या-क्या सुधार किए गए ?

८. आने-जाने के साधनों को सुगम बनाने के लिए भारत-सरकार ने क्या किया ?

९. भारत-सरकार ने किसानों के लिए क्या-क्या किया ?

१०. इस युग में भारत में शिक्षा की क्या दशा रही ?

११. सर सैयद अहमद पर नोट लिखो। (मैट्रिक १६३३)

भारत में नव-जीवन का आरंभ

१८८०—१९०५

सोलहवाँ अध्याय

लार्ड रिपन १८८०—१८८४

से

लार्ड कर्ज़न १८९९—१९०५

लार्ड रिपन

लार्ड रिपन जब यहां आया तब इंगलैंड में उदार-दल का ज़ोर था। सो लार्ड रिपन ने भी बड़ी उदारता से काम लिया। भारत-वासियों के साथ उसकी सहानुभूति थी। भारत में आते ही अफ़ग़ानिस्तान

से संधि कर ली और फिर अंतरीय प्रबंध में सुधारों की ओर ध्यान दिया। उसने, अंग्रेज़ों का विरोध होते हुए भी, वरनेक्युलर प्रेस एक्ट को रद्द कर दिया और पत्र-पत्रिकाओं को सब तरह की रुकावटों से स्वतंत्र कर दिया।



लार्ड रिपन

मैसूर

१८८१ में उसने मैसूर का शासन, जो १८३१ से अंग्रेज़ अधिकारियों के प्रबंध में था, फिर मैसूर के राजा को सौंप दिया। वहाँ से अंग्रेज़ अफ़सर हटा लिये।

शिक्षा

इस वाइसराय के समय में शिक्षा के संबंध में एक जाँच कमेटी भी बनाई गई। ग़ैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता देने की रीति पहले-पहल लार्ड रिपन ने ही चलाई। १८८२ में पंजाब विश्व-विद्यालय की नींव रखी गई।

लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट

परंतु लार्ड रिपन के सुधारों में सब से मुख्य और प्रसिद्ध सुधार यह है कि उसने भारत में लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट का बीज बोया। देहात, नगर और क़स्बों के स्थानीय मामलों के प्रबंध के लिए उसने ज़िला बोर्ड और म्युनिसिपैलिटियाँ स्थापित कीं। १८८३ में ज़िला बोर्ड-एक्ट और १८८४ में म्युनिसिपल एक्ट पास हुआ। ज़िला बोर्ड एक्ट के अनुसार प्रत्येक ज़िले के लिए एक ज़िला-बोर्ड स्थापित किया गया। इन बोर्डों में कुछ सदस्य जनता की ओर से चुने जाते हैं और कुछ सरकार की ओर से नियुक्त होकर आते हैं।

ज़िलों के अंदर सड़कों, अस्पतालों, स्कूलों इत्यादि का प्रबंध इन बोर्डों को सौंपा गया। इसी प्रकार क़स्बों और नगरों में भी स्कूलों, अस्पतालों, सड़कों, गलियों और बाज़ारों की सफ़ाई आदि का प्रबंध इन कमेटियों पर डाला गया। इन बोर्डों और कमेटियों को ये भी अधिकार दिए गए कि इन विभागों का खर्च चलाने के लिए वे अपने क़स्बे, नगर व ज़िला की सीमा के अंदर कुछ कर लगा लें। इन सुधारों से लोगों को यह पहली बार अवसर मिला कि देश के प्रबंध में वे भी भाग लें। इससे जनता को राजनीति तथा देश के प्रबंध में कुछ ज्ञान तथा अनुभव मिल सकता था।

इलबर्ट बिल १८८३

लार्ड रिपन ने भारत-सरकार की धारा-कौंसिल के क़ानूनी सदस्य मि० इलबर्ट द्वारा एक बिल पेश कराया, जिसका उद्देश्य यह था कि भारत में यूरोपियन लोगों के अभियोगों की सुनवाई भी भारतीय मेजिस्ट्रेट ही किया करें। अंग्रेज़ों ने इस बिल की कड़ी आलोचना की। बिल पास कर दिया गया। हाँ, यूरोपियन अभियुक्तों को यह अधिकार रहा कि उनके विरुद्ध मामलों का निर्णय ज्यूरी द्वारा हुआ करे।

त्याग-पत्र

इन सब बातों के कारण लार्ड रिपन भारतीयों में अत्यंत लोकप्रिय हो गया। १८८४ में लार्ड रिपन ने त्याग-पत्र दे दिया। जनता ने उसे कई अभिनंदन-पत्र दिए। जितना सम्मान इस वाइसराय का हुआ, वैसा आज तक किसी और वाइसराय का नहीं हुआ। लार्ड रिपन के स्थान पर लार्ड डफ़रिन वाइसराय होकर आया।

लार्ड डफ़रिन १८८४—१८८८

उत्तर-पश्चिमी

लार्ड डफ़रिन अत्यंत अनुभवी शासक था। रूस, रूम, मिसर और टर्की में अंग्रेज़ी दूत रहा था और कैनेडा के गवर्नर-जनरल के पद पर रह चुका था।

प्रांत की सीमा

वह बड़ा नीति-कुशल और चतुर व्यक्ति था। वह किसी को अप्रसन्न किए बिना चतुराई से अपना काम निकालना खूब जानता था। उसके समय में उत्तरी-पश्चिमी सीमा की रक्षा के लिए सीमा स्थापित करने के अभिप्राय से एक कमीशन नियुक्त किया गया ताकि मध्य-एशिया की विविध रियासतों की सीमाएँ भली-भाँति निश्चित कर दी जायँ। कमीशन को अपने उद्देश्य में पूरी सफलता मिली। रावलपिंडी में लार्ड डफ़रिन और अमीर अब्दुल रहमान की भेंट हुई। इस भेंट का परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज़ी साम्राज्य और अफ़ग़ानिस्तान का संबंध और भी दृढ़ हो गया।

पंजदेह का झगड़ा

अभी अमीर अब्दुल रहमान भारत ही में था कि १८८५ में हिरात और मरू के मध्य में पंजदेह के स्थान पर अफ़ग़ानिस्तान और रूस की सीमा पर दोनों देशों की चौकियों में झगड़ा हो गया। लड़ाई आरंभ होने ही को थी कि अमीर ने शांतिमय रीति से इस उलझन को सुलझा दिया। नहीं तो संभव था कि अंग्रेज़ों और रूसियों में लड़ाई ठन जाती।

बर्मा की तीसरी लड़ाई १८८५-८६

इस वाइसराय के समय में बर्मा की तीसरी लड़ाई हुई। राजा थीबो ने फ्रांसीसियों को विशेष व्यापारिक अधिकार देकर उनसे मित्रता स्थापित करने का यत्न किया। लार्ड डफ़रिन ने निर्णय कर लिया कि वह बर्मा में फ्रांसीसियों को पाँव न जमाने देगा। अतएव उसने यह निश्चय किया कि उत्तरी-बर्मा भी अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला लिया जाय। नवंबर १८८५ में केवल दो सप्ताह की लड़ाई के बाद राजा थीबो ने अस्त्र डाल दिये। उसे बंदी करके बंबई प्रांत में रत्नागिरि भेज दिया गया। वहाँ उसने अपने

जीवन के शेष दिन बिताये। उत्तरी-बर्मा अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया।

कांग्रेस

इसी वर्ष १८८५ में इंडियन नेशनल कांग्रेस का सूत्रपात हुआ। भारतीय विश्वविद्यालयों को शिक्षा देते हुए २८ वर्ष बीत चुके थे। भारतीयों में अब एक पीढ़ी से अधिक काल से अंग्रेज़ी शिक्षा दी जा रही थी। कालेजों और स्कूलों में भारतीयों ने अंग्रेज़ी इतिहास, पश्चिमी सभ्यता और यूरोपियन शासन-पद्धति का अच्छा अध्ययन कर लिया था। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों में अब राष्ट्रीयता का भाव ज़ोर पकड़ गया था। उनके हृदयों में यह भाव दृढ़ हो गया था कि भारतीयों को भी अपने देश के प्रबंध में भाग लेने का अधिकार होना चाहिए। कई सहृदय अंग्रेज़ भी उनके इस भाव से सहानुभूति रखते थे, इसलिए दादा भाई नारोजी, उमेशचंद्र वेनर्जी आदि कुछ भारतीयों ने और ए० ओ० ह्यूम जैसे अंग्रेज़ों ने मिलकर इंडियन नेशनल कांग्रेस की नींव रक्खी। इसका पहल अधिवेशन बंबई में दिसंबर १८१५ में हुआ। उस समय कांग्रेसियों की माँगें यह थीं कि भारतीयों को सरकारी नौकरियों में अधिक संख्या में लिया जाय; युद्ध पर जो खर्च किया जाता है उस खर्च में कमी की जाय; धारा सभाओं में भारतीयों की संख्या बढ़ाई जाय तथा कौंसिलों को सरकार की शासन-पद्धति पर आलोचना करने का अधिकार दिया जाय।

विक्टोरिया की स्वर्ण-जयंती

१८८८ में महारानी विक्टोरिया को राज्य करते पूरे पचास वर्ष बीत चुके थे। इसलिए इस वर्ष उसकी स्वर्ण-जयंती (गोल्डन-जुबिली) बड़े समारोह से देश भर में मनाई गई।

भारतीय स्त्रियों के इलाज के लिए पृथक् अस्पताल खोलने की

लेडी डफ़रिन फंड

योजना हुई। इसके लिए लेडी डफ़रिन फंड (Lady Dufferin Fund) खोला गया। इसी के नाम से शिमले में एक ज़नाना अस्पताल है।

लगान का नया क़ानून

लार्ड डफ़रिन के समय में लगान का नया क़ानून बना। इससे बंगाल, अवध और पंजाब के किसानों के स्वत्वों की रक्षा हुई। किसानों को ज़मींदार अब अपनी इच्छा से निकाल नहीं सकते थे और न ही उनका लगान बढ़ा सकते थे। १८८८ में लार्ड डफ़रिन के इंगलैंड चले जाने पर लार्ड लैंसडाऊन वाइसराय बना।

लार्ड लैंसडाऊन १८८९—१८९४

ड्यूरैंड लाईन

लार्ड लैंसडाऊन ने सीमाओं की रक्षा, बाहरी आक्रमणों से उनके बचाव और उनका भली-भाँति प्रबंध करने की तरफ़ विशेष ध्यान दिया। अमीर अब्दुल रहमान से १८९२ में एक संधि हुई और अफ़ग़ानिस्तान की पूर्वीय सीमा निश्चित करने के लिए एक कमीशन नियुक्त हुआ। इस कमीशन के निर्णयानुसार सीमा निश्चित करते समय चितराल, बाजौड, तीराह, स्वात, बुनेर और अफ़रीदियों, मुह्मंदों, वज़ीरियों तथा महसूदों के इलाक़े अफ़ग़ानिस्तान से स्वतंत्र और भारत-सरकार के अधीन समझे गये। क्योंकि यह सीमा निश्चित करने वाली कमीशन के नेता लार्ड ड्यूरैंड थे, इसलिए इसे 'ड्यूरैंड लाइन' भी कहा जाता है। लार्ड लैंसडाऊन के शासन-काल में पहले-पहल इंपीरियल-सर्विस ट्रूप्स सम्राट की सेवा के लिए रियासतों की सेना बनाई गई थी।

मनीपुर का विद्रोह

१८९१ में मनीपुर में विद्रोह हो गया था और रियासत के सेना-नायक ने कुछ अंग्रेज़ अधिकारियों को धोखे से मरवा डाला था। इसलिए रियासत पर चढ़ाई की गई। अपराधियों को दंड दे दिया गया और गद्दी पर सिंहासन के अधिकारी एक बच्चे को

बिठाकर रियासत का प्रबंध कुछ वर्षों के लिए अंग्रेज़ अफ़सरों को सौंप दिया गया।

इसी समय सरकार ने रुपये के दर की ओर अपना ध्यान दिया। १८७१ से जब से कि यूरोपियन देशों में चांदी का सिक्का हटा दिया गया था और सोने का सिक्का चलाया था, चांदी का मूल्य बहुत कम हो गया था। भारत में चांदी का सिक्का था। भारत को माल के क्रय-विक्रय में और विदेशों के ऋण में सोने का सिक्का देना पड़ता था। इसलिए सरकार को सोने के सिक्कों के बदले अधिक संख्या में चांदी के सिक्के देने पड़ते थे। १८७१ में दो शिलिंग मिलते थे, परंतु अब चांदी सस्ती हो जाने से रुपए में एक शिलिंग और एक पैंस मिलता था। अंत में १८९३ में लार्ड लैंसडाऊन ने यह निर्णय किया कि रुपये का दर प्रति रुपया एक शिलिंग चार पैंस नियत किया जाय और भारत में सोने का सिक्का भी उचित सिक्का समझा जाय। यह दर यूरोप के महायुद्ध तक रहा।

सिक्का

इसी वाइसराय के समय में धारा-सभाओं की बनावट में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया। १८६१ में धारा-सभाओं के बारह सदस्यों में से छै ग़ैर-सरकारी हो सकते थे, परंतु इन सबको वाइसराय नियुक्त करता था। १८९२ में पार्लियामेंट ने इसमें यह परिवर्तन किया कि भविष्य में वाइसराय की कौंसिल में बारह के बदले सोलह सदस्य हों, जिनमें से कम से कम आठ ग़ैर-सरकारी हों, और इन आठ में से चार ऐसे व्यक्ति हों जिनको मद्रास बंगाल, बंबई और आगरा व अवध के प्रांतों की धारा-सभाएं चुन कर भेजें। प्रांतीय कौंसिलों की संख्या भी बढ़ा दी गई और यह निर्णय हुआ कि ज़िला बोर्डों और म्युनिसिपल कमेटियों के सदस्य अपने में से ही सदस्य चुन कर प्रांतीय कौंसिलों में भेजें। इन कौंसिलों को यह अधिकार दिया कि वे सरकार के बजट में आमदन व खर्च पर वाद-विवाद कर सकें।

कौंसिल सुधार

लार्ड एलगिन दूसरा १८९४—१८९९

चितराल और तीराह

लार्ड एलगिन का शासन-काल इसलिए प्रसिद्ध है कि इस समय उत्तर-पश्चिमी सीमा पर बहुत गड़-बड़ मची। चितराल में शेर अफ़ज़ल ने निज़ामुलमुल्क मेहतर चितराल को निकाल कर स्वयं गद्दी पर अधिकार जमा लिया और जंदौल का शासक उमरा खाँ उसका सहायक बन गया। भारत-सरकार ने निज़ामुलमुल्क का पक्ष लिया और शेर अफ़ज़ल तथा उमरा खाँ को देश से निकल जाने का आदेश दिया। परंतु उन्होंने ऐसा न किया और मेजर राबर्ट रेज़ीडेंट को चितराल में घेर लिया। परंतु अंग्रेज़ी सेनाएँ पहुँच गईं। उमरा खाँ हार कर अफ़ग़ानिस्तान की ओर भाग गया और शेर अफ़ज़ल बंदी हो कर भारत आया। निज़ामुलमुल्क चितराल की गद्दी पर फिर बिठाया गया और प्रबंध के लिए रियासत में अंग्रेज़ी सेना रखी गई। परंतु कुछ ही देर बाद सीमांत पर फिर झगड़े आरंभ हो गए। उत्तरीय वज़ीरिस्तान में वज़ीरियों ने एक राजनीतिक अधिकारी को मार डाला और एक मुल्ला ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध जहाद करने का फ़त्वा दे दिया। अफ़रीदी, वज़ीरी और महसूद इत्यादि पहाड़ी जातियों के पठानों ने सिर उठाया। उनको दबाने के लिए एक सेना भेजी गई। यह जातियाँ दुर्गम पहाड़ी घाटियों में रहती थीं, इसलिए सेना को सफलता पाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। १८९८ के पहले सीमांत पर शांति स्थापित न हो सकी। अंत में समस्त उद्दंड जातियों ने युद्ध का हर्जाना देकर और बहुत-सी बंदूकें अंग्रेज़ों को सौंपकर अधीनता मान ली।

क़ानून बनाया जिससे साहूकार ऋण के बदले काश्तकार की ज़मीन न ले सकें। (The Panjab Land Alienation Act 1900) काश्तकारों और जगीरदारों की सहायता के लिए देश में ज़मींदारा बैंक खोले गये। रईसों के लड़कों को सैनिक शिक्षा देने के लिए क्वेटा में इंपीरियल केडिट कोर स्थापित की गई। प्राचीन साहित्यिक इमारतों की रक्षा के लिए एक पृथक् विभाग बनाया गया। भारत में प्राचीन सभ्यता के निशान बहुत संख्या में मिलते है। इनके द्वारा भारत के इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ता है। लार्ड कर्ज़न ने यह विभाग (Archeological Department) स्थापित करके भारत के इतिहास पर एक विशेष अनुग्रह का काम किया। व्यापार और कला-कौशल की उन्नति के लिए उसने भारत-सरकार के अंतर्गत व्यापार और कला-कौशल का विभाग भी खोला। उसने नमक पर भी लगभग आधा कर कर दिया। जिन लोगों की वार्षिक आमदन एक हज़ार से कम थी, उनको इनकम-टैक्स माफ़ कर दिया गया। १६०४ में उसने यूनिवर्सिटियों के संबंध मे एक क़ानून पास किया। इस क़ानून के अनुसार यूनिवर्सिटियाँ, जो पहले केवल परीक्षाएँ लेने की मशीनें ही थीं, उनको शिक्षा की देख-रेख का अधिकार भी दे दिया गया और वे स्वयं भी छात्रों को शिक्षा देने लगीं। परंतु लोगों ने इस क़ानून का विरोध किया, क्योंकि उनके विचार में इस क़ानून से शासन की शिक्षा-संबंधी मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिक अवसर मिल गया।

बंगाल-विच्छेद

लार्ड कर्ज़न के एक काम का देश भर में सर्वत्र विरोध किया गया। इसमें संदेह नहीं कि १६०५ में बंगाल प्रांत इतना बड़ा था कि उसका प्रबंध एक लेफटिनेंट-गवर्नर से भली-भाँति न हो सकता था। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि इस प्रांत को दो भागों में बांट दिया जाय। लार्ड कर्ज़न ने सोचा कि चटगाँव, ढाका और राजशाही की

कमिश्नरियों को आसाम के साथ मिलाकर एक नया पूर्वीय बंगाल और आसाम बना दिया जाय और इस नए प्रांत को एक लेफ्टिनेंट-गवर्नर के अधीन रखा जाय। शेष बंगाल एक दूसरे लेफ्टिनेंट-गवर्नर के अधीन रहे। इस भांति उसके विचार में गवर्नर का काम हलका हो सकता था, परंतु लार्ड कर्ज़न को यह ख़याल न आया कि इससे बंगला भाषा-भाषी लोग दो भागों में बंट जायँगे और पश्चिमी बंगाल में जहां बंगाली अधिक शिक्षित, सभ्य और स्वतंत्र विचारों के हैं, प्रांत में न्यून संख्या में रह जायँगे। इस प्रांत में बिहार और उड़ीसा वालों की जन-संख्या बंगालियों से अधिक थी। लार्ड कर्ज़न के इस प्रस्ताव से बंगाली बहुत क्रोध में आए। यूनिवर्सिटी एक्ट से लोग पहले ही अप्रसन्न थे। बंग-भंग से सारे बंगाल में हल-चल मच गई। इसके विरुद्ध भारी आंदोलन हुआ। सशस्त्र क्रांति तक अवस्था पहुंच गई। कई हत्याएँ हुईं और राजनीतिक डाके पड़ने लगे।

प्लेग और अकाल

लार्ड कर्ज़न के समय में भी देश में प्लेग का जोर रहा और १९०० में सारे देश में भयंकर अकाल पड़ा। इस समय भी अकालों के रोकने के उपाय सोचने के लिए एक कमेटी बैठाई गई। प्लेग लार्ड एल्गिन दूसरे के समय भी फैली थी। प्लेग और अकाल से भारतवर्ष में प्रतिवर्ष अब कई लोग मृत्यु का मुंह देखते हैं।

विक्टोरिया का देहांत

जनवरी १९०१ में विक्टोरिया ६४ वर्ष राज्य करके परलोक सिधार गईं और उनका बड़ा बेटा एडवर्ड सप्तम सिंहासन पर बैठा। राज्याभिषेक की घोषणा दिल्ली में की गई और इस अवसर पर दिल्ली में दूसरा राज-दरबार हुआ। इस बार भी सब राजे तथा नवाब दरबार में बुलाए गए और [illegible] समारोह रहा।

सितंबर १९०१ में अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अब्दुल रहमान का देहांत हो गया और उसके स्थान पर उसका

हबीब-उल्लाह बड़ा बेटा हबीब उल्लाह गद्दी पर बैठा।

१९०५ में लार्ड कर्ज़न और कमांडर-इन-चीफ़ लार्ड किचनर में, व्यवस्थापक कौंसिल में एक फ़ौजी सदस्य रखने

कर्ज़न का त्याग-पत्र के प्रश्न पर, झगड़ा हो गया। भारत-सचिव ने भी इस मामले में लार्ड किचनर का समर्थन किया। इसलिए लार्ड कर्ज़न ने १९०५ में त्याग-पत्र दे दिया और इंगलैंड वापस चला गया।

प्रश्न

१. लार्ड कर्ज़न के शासन-काल का वर्णन लिखो।
(भूषण १९३८; मैट्रिक १९३७)

२. "लार्ड रिपन भारतीयों के प्रति विशेष सहानुभूति-पूर्ण थे।" इस कथन का समाधान करो। (मैट्रिक १९३९)

३. इंडियन नेशनल कांग्रेस पर संक्षिप्त नोट लिखो।
(मैट्रिक १९४०)

४. लार्ड कर्ज़न के बंग-विच्छेद पर संक्षिप्त नोट लिखो।
(भूषण १९३९; मैट्रिक १९४०)

५. १९०४ के इंडियन यूनिवर्सिटीज़ एक्ट पर संक्षिप्त नोट लिखो।
(मैट्रिक १९४१)

६. लार्ड कर्ज़न के शासन-काल की प्रसिद्ध घटनाओं का वर्णन करो। (मैट्रिक १९४२)

७. इलबर्ट बिल पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९३९)

८. स्थानीय स्वराज्य पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९४०)

९. पंजाब लैंड एलिनेशन एक्ट पर संक्षिप्त नोट लिखो।
(मैट्रिक १९३७, १९४१)

१०. लार्ड लैंसडाउन, लार्ड एलगिन और लार्ड कर्ज़न के शासन-काल की घटनाओं पर और विशेष रूप से उनकी सीमांत-संबंधी नीति पर एक संक्षिप्त परंतु विवेचनात्मक नोट लिखो। (मैट्रिक १९४१)

११. लार्ड डफ़रिन के शासन-काल की घटनाओं का उल्लेख करो।

१२. आने-जाने के साधनों को सुगम बनाने का भारत की संपन्नता पर क्या प्रभाव पड़ा?

१३. लार्ड किचनर तथा इंडियन नेशनल कांग्रेस पर नोट लिखो।

१४. भारत की शिक्षा-संबंधी उन्नति के संबंध में तुम क्या जानते हो?

१५. नमक के कर पर नोट लिखो।

१६. १८९२ के वैधानिक सुधारों पर नोट लिखो।

स्वराज्य आंदोलन

ग्यारहवाँ अध्याय

लार्ड मिंटो दूसरा १९०५–१९१०

से

लार्ड चेम्सफोर्ड १९१६–१९२१

देश में अशांति की लहर

लार्ड मिंटो १९०५ में वाइसराय होकर भारत आया। यह उस लार्ड मिंटो का पड़पोता था, जो लार्ड वेलेज़ली के बाद १८०७ से १८१३ तक भारत का गवर्नर-जनरल रहा। इस वाइसराय के समय में देश में भयानक अशांति और **गड़बड़ मची** रही। १९०६ में कलकत्ता इंडियन नेशनल कांग्रेस की जो **बैठक हुई**, उसके


लार्ड मिंटो

कांग्रेस के उद्देश्य में एक विशेष परिवर्तन किया गया। कांग्रेस के प्रधान दादा भाई नारोजी के प्रस्ताव से कांग्रेस ने यह निर्णय किया कि भारतीयों का उद्देश्य देश के लिए स्वराज्य प्राप्त करना है। लार्ड मिंटो के शासन-काल में राजनीतिक अपराध अधिक होने लगे। अफ़सरों पर प्रहार होने लगे थे। अंग्रेज़ों को बाहर निकालने के लिए षड्यंत्र रचे जाने लगे। स्वदेश-आंदोलन को दबाने के लिए कुछ क़ानून बनाए गए। सन १८१८ के एक्ट के अनुसार कुछ लोग कालेपानी भेजे गए। इसी समय विस्फ़ोटक पदार्थ एक्ट (Explosives Act), विद्रोह मीटिंगों के रोकने का एक्ट (The Prevention of Seditious Meetings Act) और फ़ौजदारी क़ानून सुधार (Criminal Law Amendment Act) बनाए गए, जिनमें विद्रोहात्मक लेखों के निषेध का विशेष ध्यान रखा गया।

मिंटो-मार्ले सुधार

लोगों को शांत करने लिए इस वाइसराय के शासन-काल में भारत की शासन-पद्धति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। ये सुधार मिंटो-मार्ले सुधार (Minto-Morley Reforms) के नाम से प्रसिद्ध हैं। १९०९ में भारत-सचिव की इंडिया कौंसिल में पहली बार दो भारतीय सदस्य नियुक्त हुए। भारत-सरकार और प्रांतीय सरकारों की व्यवस्थापक कौंसिलों में भी एक भारतीय सदस्य नियुक्त हुआ। इसके अतिरिक्त धारा सभाओं (Legislative councils) के चुनाव में भी बहुत-से परिवर्तन किए गए। १८९२ में वाइसराय की कौंसिल के १६

सदस्य थे। उनकी संख्या अब बढ़ा कर ६० कर दी गई, जिनमें २८ सरकारी और ३२ ग़ैर सरकारी नियुक्त हुए। प्रांतीय कौंसलों के सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गई और उनमें ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक रखी गई। परंतु वाइसराय की कौंसिल में सरकारी मेंबरों की अधिक संख्या रही। इन सुधारों में सांप्रदायिक-प्रतिनिधित्व का सिद्धांत (Communal Representation) भी चला गया। प्रत्येक कौंसिल में मुसलमानों, ज़मींदारों और व्यापार-मंडलों को अलग-अलग प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला। इन कौंसिलों के अधिकारों में भी वृद्धि की गई। १८९२ के सुधारों से कौंसिल के सदस्य केवल आय और व्यय पर वाद-विवाद ही कर सकते थे, परंतु अब इन कौंसिलों को यह भी अधिकार दे दिया गया कि प्रस्तावों द्वारा बजट की आलोचना भी कर सकें और यदि ये प्रस्ताव पास हो जायें तो इन नए सुधारों के अनुसार सरकार को कारण बताना पड़ेगा कि पास किए हुए प्रस्तावों को कार्य स्वरूप में क्यों नहीं लाया गया। सरकार के साधारण प्रबंध-संबंधी मामलों पर भी प्रस्ताव पेश करने का अधिकार दिया गया। इन सुधारों से चाहे प्रांतीय कौंसिलों में जनता के प्रतिनिधियों को यह अधिकार तो मिल गया कि सरकार की कार्यवाही की आलोचना कर सकें, परंतु ग़ैर-सरकारी सदस्यों को शासन के संचालन में कोई उत्तरदायित्व न दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में राजनीतिक अशांति अधिक फैल गई तथा देश-प्रेम का आंदोलन और ज़ोर पकड़ गया। अब कांग्रेस में भी दो दल बन गए। माडरेटस (moderates) तो इन सुधारों को काफ़ी समझते थे, परंतु ऐक्सट्रीमिस्टस (extremists) इनको बहुत कम और असंतोष-जनक। केंद्रीय कौंसिल में गोपाल कृष्ण गोखले और सुरेंद्रनाथ बैनर्जी माडरेटस के नेता थे और बालगंगाधर तिलक ऐक्सट्रीमिस्टस थे।

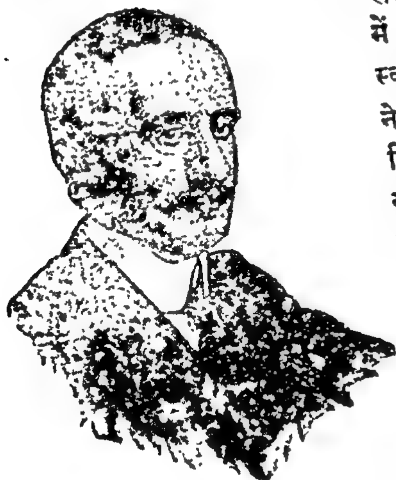
१९१० में सम्राट् एडवर्ड सप्तम का देहांत हो गया, और जार्ज पंचम उनका बेटा जार्ज पंचम सिंहासन पर बैठा।

लार्ड हार्डिंग दूसरा १९१०–१९१६

१९१० के अंत में लार्ड हार्डिंग वाइसराय नियुक्त होकर आया। यह उस लार्ड हार्डिंग का पोता था, जिसके शासन-काल में सिक्खों की पहली लड़ाई हुई थी।

राज-दरबार १९११ और नए विधान

उसके वाइसराय बनने के थोड़े ही समय बाद १२ दिसंबर सन १९११ में दिल्ली में तीसरा राज-दरबार बड़े समारोह से हुआ। इस बार सम्राट् जार्ज पंचम, सम्राज्ञी मेरी के साथ, राज्याभिषेक के लिए भारत पधारे। देश के सब राजा और नवाबों ने दरबार में उपस्थित होकर अधीनता स्वीकार की और सम्राट् जार्ज ने इस दरबार में घोषणा की कि भविष्य के लिए भारत-सरकार की राजधानी कलकत्ता से बदलकर दिल्ली होगी। इसके अतिरिक्त बंग-विच्छेद की आज्ञा भी वापस ले ली गई, और बंगाल प्रांत एक गवर्नर और कौंसिल के अधीन कर दिया गया। आसाम में पहले की तरह एक चीफ़ कमिश्नर नियुक्त हुआ और छोटा नागपुर, बिहार तथा उड़ीसा को मिलाकर एक नया प्रांत बनाया गया। पटना इस प्रांत की राजधानी बनाई गई। इस घोषणा से बंगाली प्रसन्न हो गए, परंतु कलकत्ता से राजधानी हट जाने का दुःख उन्हें अवश्य हुआ।



लार्ड हार्डिंग दूसरा

महायुद्ध और उसके कारण

अगस्त १९१४ में जर्मनी की साम्राज्य-लोलुपता के कारण यूरोप में एक महायुद्ध छिड़ गया। लार्ड हार्डिंग ने लाहौर और मेरठ से भारतीय सेना के दो डिवीयन यूरोप भेजे। उन्होंने यूरोप के शीत में भी वीरता से शत्रु का सामना किया और येपरले, न्यूव-शपल (Neuve Chapelle) और लूस (Loos) की लड़ाइयों में अधिक भाग लिया और जब तक नई अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी सेनाएँ उनका स्थान लेने को न आगईं, उन्होंने जर्मनों को पेरिस की ओर बढ़ने से रोक रखा। इसके बाद भारतीय सेनाओं को इराक, पैलेसटाइन और पूर्वीय अफ्रीका भेजा गया। ईराक और अरब में भारतीय सेनाओं ने बसरा, अम्मारा, नासिरया और कुतुलअमारा पर अधिकार जमाकर १९१७ में बग़दाद जीत लिया। पैलेसटाइन में भी भारतीय सेनाओं ने १९१८ में जरोशलम और दमिश्क़ जीत लिये। इस समय भारतीय सेना की संख्या दो लाख से बढ़ कर दस लाख हो गई। इसमें से लगभग छत्तीस हज़ार सैनिक मारे गए और सत्तर हज़ार घायल हुए। भारत ने डेढ़ अरब रुपया भी इंगलैंड को भेंट किया। लार्ड सिनहा और महाराजा बीकानेर युद्ध-संबंधी राजकीय कांफ्रेंस में भारत की ओर से प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए और उन्होंने भारत की ओर से सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए। यह महायुद्ध वारसेलस की संधि द्वारा १९१९ में समाप्त हुआ। जर्मनी को एक भारी रक़म हर्जाने में देनी पड़ी।

लार्ड चेम्सफ़ोर्ड १९१६–१९२१

रौलेट एक्ट और आंदोलन

अभी युद्ध समाप्त हो न हुआ था कि लार्ड हार्डिंग का शासन-काल समाप्त हो गया। इसलिए १९१६ में लार्ड चेम्सफ़ोर्ड लार्ड हार्डिंग के स्थान पर वाइसराय नियुक्त होकर भारत आया। १९१९ में इम्पीरियल कौंसिल में एक क़ानून, जो

रौलेट एक्ट (Rowlatt Act) के नाम से प्रसिद्ध है, बनाया गया। कौंसिल के सब भारतीय सदस्य इस क़ानून के विरुद्ध थे, परंतु फिर भी यह क़ानून पासकर दिया गया। इस पर १६१६ में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह-आंदोलन आरंभ कर दिया। अप्रैल १६१६ में इस क़ानून के पास हो जाने पर अप्रसन्नता के रूप में सारे देश में हड़ताल की गई। अमृतसर में जलियां वाला बाग़ में भी एक सभा हुई, परंतु सरकार ने इस सभा को विसर्जित करना चाहा। इस अभिप्राय से जनरल डायर ने गोली चला दी, जिससे बहुत-से लोग मारे गये और कई एक घायल हुये। मुसलमान भी टर्की की हार से और बाद में उसके साथ किए गए बर्ताव से अप्रसन्न थे। उन्होंने ख़िलाफ़त का आंदोलन आरंभ कर दिया।



लार्ड चेम्सफ़ोर्ड

अफ़ग़ानों की तीसरी लड़ाई १६१६-२१

इन्हीं दिनों में जलालाबाद में अफ़ग़ानिस्तान के अमीर हबीब-उल्लाह को मार दिया गया और उसका तीसरा लड़का अमान-उल्लाह अफ़ग़ानिस्तान की गद्दी पर बैठा। यूरोप के महायुद्ध में अमीर हबीब-उल्लाह निष्पक्ष रहा था, परंतु अफ़ग़ान उसकी इस नीति के विरुद्ध थे और वे चाहते थे कि इस युद्ध से लाभ उठाकर पेशावर पर अधिकार जमा लिया जाय। जब अमान-उल्लाह ने देखा कि

पंजाब में बहुत अशांति फैली हुई है और जलियांवाला बाग़ अमृतसर में जनरल डायर के गोली चलाने के बाद प्रांत में मारशल ला (Martial Law) जारी है, तब उसने भारत पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान की तीसरी लड़ाई छिड़ गई। भारतीय सेनाएँ अभी तक ईराक, पैलेसटाइन, अफ्रीका और यूरोप के मैदानों में पड़ी थीं, परंतु भारत की शेष सेना ने अफ़ग़ानों के आक्रमण को रोक दिया। अंत में रावलपिंडी में एक संधि हुई। अंग्रेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान की स्वतंत्रता को मान लिया और अफ़ग़ानिस्तान के अमीर ने भारत-सरकार से भत्ता लेना छोड़ दिया। इसके बाद अफ़ग़ानिस्तान भारत के अंतर्राष्ट्रीय विभाग से सदैव के लिए स्वतंत्र हो गया।

मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार

१९१७ में मि० मांटेग्यू भारत-सचिव बना और इसी वर्ष अगस्त में उसने पार्लियामेंट के सामने एक ऐतिहासिक घोषणा की "इंगलैंड के सम्राट् की अंग्रेज़ी सरकार की नीति, जिससे भारत सरकार पूर्णरूप से सहमत है, यह है कि भारत में, जो अंग्रेज़ी साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन (Responsible Government) भाव उत्पन्न करने के लिए भारतवासियों को भारत के प्रबंध अथवा शासन-प्रणाली के प्रत्येक विभाग में प्रतिदिन अधिकाधिक भाग लेने का अवसर दिया जाय, और इन अधिकारों को प्रतिदिन विस्तृत किया जाय, ताकि भारतीयों को अपने देश पर स्वयं शासन करने की शिक्षा मिले। इसलिए इंगलैंड की सरकार ने निश्चय किया है कि इस उद्देश्य को पाने के लिए जितना शीघ्र हो सके उचित साधन काम में लाए जायँ। इस नीति को कार्य स्वरूप में लाने के लिए नवंबर १९१७ में मांटेग्यू स्वयं भारत वर्ष आया और लार्ड चेम्सफ़ोर्ड के साथ मिलकर पूरी जाँच करके उसने एक रिपोर्ट तैयार की। इस रिपोर्ट के आधार पर

दिसंबर १६१६ में एक क़ानून पार्लियामेंट में पेश होकर पास हुआ। इस इस क़ानून के अनुसार तत्कालीन शासन-पद्धति में भारी परिवर्तन किया गया। भारत-सरकार की व्यवस्थापक कौंसल में तीन भारतीय सदस्य नियुक्त हुए। केंद्रीय सरकार के लिए एक भारतीय एसेंबली बनाई गई और इंगलैंड की पार्लियामेंट की भाँति इसके दो हाऊस (House) बनाए गए, एक कौंसिल आव स्टेटस और दूसरा लेजिसलेटिव एसेंबली (केंद्रीय धारा-सभा) । कौंसिल आव स्टेटस में ६० सदस्य और एसेंबली में १४४ सदस्य नियत किए गए। इन दोनों हाऊसों में चुने हुए सदस्य बहु-संख्या में रखे गए। लेजिसलेटिव एसेंबली में १०४ और कौंसिल आव स्टेटस में ३३। इससे पहले वाइसराय की कौंसिल के सदस्य प्रांतीय कौंसिल से निर्वाचित होकर आते थे, परंतु अब यह निश्चय हुआ कि जन-साधारण चुनाव द्वारा इन सदस्यों का निर्वाचन करें। इस भारतीय पार्लियामेंट को अधिकार भी पुरानी वाइसराय की कौंसिल से अधिक दिये गए। अब यह निर्णय हुआ कि सरकार की आमदन व ख़र्च का सारा बजट एसेंबली के सामने पेश किया जाय और सेना तथा अंतर्राष्ट्रीय विभागों के अतिरिक्त सब विभागों के बजट पर एसेंबली के सदस्यों की सम्मति ली जाय। एसेंबली बहु-मत से जो निर्णय करे, उसे ही अंतिम समझा जाय। परंतु विशेष परिस्थितियों में वाइसराय को यह अधिकार दिया गया कि वह एसेंबली के निर्णय को रद्द करदे किसी विभाग की उस ग्रांट को स्वीकार कर दे, जिसे एसेंबली ने अस्वीकार कर दिया हो। इन सुधारों से सरकार के लिए प्रायः यह असंभव हो गया कि वह एसेंबली के निर्णय के विरुद्ध कोई क़ानून पास करे।

डायर्की

प्रांतीय सरकारों की शासन-पद्धति में और भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। प्रत्येक सरकार के अधीन विभागों को दो हिस्सों में बाँटा गया। एक वे जो भारतीय मंत्रियों के अधीन कर दिए गये

(Transferred Departments) और दूसरे वे जो गवर्नर ने अपनी व्यवस्थापक कौंसिल के ही अधीन रखे (Reserved Departments)। शिक्षा, अस्पताल, स्वास्थ्य, कृषि, कला-कौशल, आबकारी, सड़कों और मकानों का बनाना, म्युनिसिपेलिटियां, ज़िला बोर्ड और देहाती पंचायतों के सब विभाग भारतीय मंत्रियों को सौंपे गये। भूमि का कर, पानी का लगान, नहर, पुलिस, जंगल, दीवानी और फ़ौजदारी की अदालतें, जेलखाने और शासन-प्रबंध के सब विभाग गवर्नरों की कौंसिलों के अधीन ही रखे गये। इस शासन-व्यवस्था को डायरकी (Diarchy) कहा जाता है। नए सुधारों के अनुसार यह भी निर्णय किया गया कि प्रत्येक प्रांतीय कौंसिल के सदस्यों में से ७५ प्रतिशत निर्वाचन (election) द्वारा चुने जाएँ। मंत्री कौंसिलों के अधीन रहें और यदि कोई कौंसिल किसी मंत्री के विरुद्ध अविश्वास का वोट पास कर दे तो उस मंत्री के लिए यह आवश्यक होगा कि वह अपने पद से त्याग-पत्र दे दे। उन विभागों में जो कौंसिलों से सुरक्षित रखे गए थे, सरकार को अधिकार दिया गया कि वह कौंसिल के निर्णय के विरुद्ध कार्यवाही करे, परंतु आय-व्यय के सब बजटों का प्रांतीय कौंसिलों में पास होना आवश्यक हो गया।

प्रांतीय सरकार

इन सुधारों के साथ ही सरकार की आय के साधनों को भी केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों में बांट दिया गया। वस्तुओं के आने और जाने पर कर (Import and Export duty), इनकम टैक्स, नमक, रेल, डाक, तार, अफ़ीम की आय, केंद्रीय सरकार को सौंपे गये। भूमि-कर, नहरों का कर, जंगल, आबकारी, स्टैंप, तथा कोर्ट फ़ीस और और रजिस्ट्री आदि विभागों की आय प्रांतीय सरकार के अधिकार में रखी गई। इन सुधारों से पहले भूमि-कर, नहरों का कर, स्टैंप, कोर्ट-फ़ीस इत्यादि कई विभागों की आय केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों में

बराबर-बराबर बंटती थी, परंतु इन नए सुधारों से दोनों सरकारों की आय के साधन पृथक्-पृथक् हो गए। पहले केंद्रीय सरकार कई विषयों में प्रांतीय सरकारों को आर्थिक सहायता भी देती थी, परंतु अब आर्थिक सहायता की इस प्रणाली का अंत कर दिया गया। प्रांतीय सरकारें अपनी आय के साधनों पर ही निर्भर रहने लगीं। इन सुधारों में केंद्रीय सरकार में मंत्रियों की नियुक्ति नहीं हुई और प्रांतीय सरकारों के अधीन सारे विभाग भी मंत्रियों को नहीं सौंपे गए। भारतीय राष्ट्रीय दल के नेता यह चाहते थे कि भारत की केंद्रीय पर्लेंवली और प्रांतीय कौंसिलों को शासन-प्रणाली पर पूरा-पूरा अधिकार दिया जाय। इस सुधार-नीति से उनकी इच्छा पूरी न हुई। इसलिए देश में भारी गड़-बड़ मची और १६२० में असहयोग-आंदोलन आरंभ हो गया। जब नई कौंसिलों का चुनाव आरंभ हुआ, तब राष्ट्रीय दल ने कौंसिलों का बाईकाट (boycott) कर दिया। इस चुनाव के कुछ समय के बाद ही १६२१ में लार्ड चेम्सफ़ोर्ड इंगलैंड वापस चला गया।

नरेंद्र-मंडल

१६२० में दिल्ली में नरेंद्र-मंडल (Chamber of Princes) खोला गया। इसमें भारत के राजे-महाराजे सम्मिलित किए गए। इसकी वर्ष में एक बार मीटिंग होती है। इस मंडल का कर्त्तव्य भारत-सरकार को रियासतों और साम्राज्य के विषयों पर परामर्श देना है।

लार्ड सिनहा

इसी वाइसराय के समय लार्ड सिनहा बिहार और उड़ीसा प्रांत के गवर्नर नियुक्त हुए। ये पहले भारतीय हैं, जिन्हें यह सत्कार प्राप्त हुआ है। परंतु कुछ ही समय के बाद इन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। भारत में लार्ड की उपाधि अभी तक इन्हें ही मिली है।

सन् १६२० में अकाली सिक्खों ने बलपूर्वक गुरुद्वारों पर क़ब्ज़ा

गुरु-द्वारा-प्रबंधक कमेटी करना शुरू कर दिया। इस कार्य के लिए अकाली सिक्खों ने संगठित होकर 'शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक कमेटी' के नाम से एक कमेटी बनाई। इस कमेटी को अपने उद्देश्य में कई बाधाओं का सामना करना पड़ा। कई बार पुलिस से भी मुठभेड़ होती रही। अंत में इसका मनोरथ सफल हुआ। अब सब गुरुद्वारे इसी कमेटी के प्रबंध में हैं।

लार्ड चेम्सफ़ोर्ड के स्थान पर लार्ड रीडिंग वाइसराय होकर भारत आया।

प्रश्न

१. मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९३७)

२. १९१९ के गवर्मेंट आफ़ इंडिया एक्ट पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९४०, १९४२)

३. रौलेट एक्ट पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९४०; मैट्रिक १९४१)

४. लार्ड चेम्सफ़ोर्ड के शासन-काल का संक्षिप्त वर्णन दो। (भूषण १९३८; मैट्रिक १९४३)

५. मिंटो-मोर्ले सुधार पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९३८)

६. मिंटो-मोर्ले सुधार से शासन-प्रबंध में क्या परिवर्तन हुआ? (भूषण १९३८, १९४०)

७. तीसरी अफ़ग़ान लड़ाई के कारण और परिणाम लिखो। (भूषण १९३९; १९४१)

८. मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार द्वारा भारतवर्ष के शासन-प्रबंध में क्या परिवर्तन हुआ? (भूषण १९३९)

९. गोखले पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९४०)

१०. सम्राट् अमान-उल्लाह् पर नोट लिखो।

११. भारत ने यूरोप के महायुद्ध में क्या भाग लिया ?

१२. १९११ के दिल्ली-दरबार पर नोट लिखो।

१३. १९१९ में मांटग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिफ़ार्म स्कीम द्वारा भारत की शासन-पद्धति में क्या-क्या सुधार हुए ?

१४. १९०९ द्वारा दिए गए मिंटो-मोर्ले रिफ़ार्म स्कीम के सुधार वर्णन करो।

१५. लार्ड मिंटो दूसरे के शासन-काल की घटनाओं का वर्णन करो।

१६. डायरकी (Diarchy) से तुम क्या समझते हो ?

अठारहवाँ अध्याय

लार्ड रीडिंग १९२१—१९२६
से
लार्ड वेवल १९४३—

राजनीतिक दशा

लार्ड रीडिंग इंगलैंड का प्रधान न्यायाधीश (चीफ़ जस्टिस) था। यह वाइसराय बहुत चतुर और बुद्धिमान व्यक्ति था। जब यह वाइसराय होकर आया, तब भारत में असहयोग-आंदोलन ज़ोरों पर था। जलियाँवाला बाग़ अमृतसर की दुर्घटना, ख़िलाफ़त की समस्या और नव-विधान के कारण देश में अशांति का ज़ोर था। इन तीन कारणों से हिंदू-मुसलमान संगठित हो गए थे और देश में सरकार के विरुद्ध अप्रसन्नता की लहर दौड़ गई थी। परंतु कुछ समय के बाद इंगलैंड ने तुर्कों के साथ संधि पर दुबारा विचार करके उनको प्रसन्न कर लिया। जलियाँवाला बाग़ और मारशल ला के पीड़ितों को आर्थिक सहायता दी गई। पत्र-पत्रिकाओं और सभाओं पर जो रुकावटें लगाई गई थीं,

ये हटा ली गईं। रौलेट एक्ट (Rowlatt Act) भी रद्द कर दिया गया। धीरे-धीरे असहयोग-आंदोलन भी मंद पड़ गया। महात्मा गांधी ने असहयोग की नीति को छोड़ दिया। दूसरी ओर आंदोलन के बहुत-से नेता गिरफ़्तार कर लिए गए। अंत में लोगों ने अनुभव किया कि बाईकाट (boycott) की नीति कुछ ऐसी सफल सिद्ध नहीं हुई। १९२३ में स्वराज्य-पार्टी ने कौंसिलों में जाकर वहाँ सरकार के विरुद्ध रुकावट डालने की नीति अपनाने का निर्णय किया। १९२४ में सी० पी० और बंगाल के प्रांतों में स्वराज्य-पार्टी मंत्री-मंडल तोड़ने में सफल हो गई। परंतु साधारणतया रुकावट की नीति भी कुछ ऐसी सफल सिद्ध नहीं हुई। सरकार का काम पूर्ववत् चलता रहा।



अर्ल आफ रीडिंग

नाभा, होलकर और भरतपुर

सन् १९२३ में नाभा और पटियाला के राज्यों में झगड़ा शुरू हो गया। मामला भारत-सरकार के पास गया। इस झगड़े का परिणाम यह हुआ कि नाभा-नरेश ने गद्दी से त्याग-पत्र दे दिया। उसके स्थान पर उसके लड़के को गद्दी पर बिठाया गया। १९२५ में महाराज होलकर को गद्दी से हटाया गया और १९२६ में भरतपुर के राजा को।

दक्षिण अफ्रीका

लार्ड रीडिंग के समय में दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की अवस्था की ओर भी ध्यान देना पड़ा। वहाँ भारतीयों से संतोष-जनक व्यवहार नहीं किया जाता था। अंत में दक्षिण अफ्रीका से भारत-सरकार का समझौता हो गया और यह निर्णय हुआ कि भविष्य के लिए भारत-सरकार की ओर से अफ्रीका में बसने वाले भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए एक भारतीय एजेंट-जनरल नियुक्त किया जाय। पहला एजेंट-जनरल मि० श्रीनिवास शास्त्री को नियुक्त किया गया।

इंचकेप कमेटी

महायुद्ध के कारण भारत-सरकार की आर्थिक दशा ठीक न थी। सन् १९२२ में इंचकेप कमेटी (Inchcape Committee) बनाई गई। इस कमेटी ने खर्च कम करने के कुछ उपाय सुझाए।

फ़ौजी कालेज

देहरादून में एक फ़ौजी कालेज खोला गया और सैंडहर्स्ट कालेज में भारतीयों के लिए दस स्थान नियत किए गए। भारतीय सैनिकों को उच्च-पद मिलने का वचन मिला। एक हिन्दुस्तानी बेड़े (Navy) का भी प्रस्ताव पास हुआ।

सिविल सर्विस के लोग अपने वेतन से असंतुष्ट थे। वे अधिक

वेतन लेना चाहते थे। इस विषय की जांच के
ली कमिशन १९२२ लिए एक कमीशन नियुक्त हुआ। इस कमीशन
की रिपोर्ट पर सिविल सर्विस वालों का वेतन
बढ़ा दिया गया।

एसेंबली के एक प्रस्ताव के अनुसार कि शासन-पद्धति में शीघ्र सुधार होना चाहिए एक कमेटी नियुक्त की
मुडीमन कमेटी १९२४ गई। सर एलेक्जेंडर मुडीमैन इस कमेटी का सभापति था। कमेटी में कुछ भारतीय सदस्य भी थे। कमेटी ने रिपोर्ट की कि उत्तरदायित्वपूर्ण शासन शीघ्र मिलना चाहिए।

१९२६ में लार्ड रीडिंग की अवधि समाप्त होने पर लार्ड अर्विन वाइसराय हुआ।

लार्ड अर्विन १९२६—१९३१

साइमन कमीशन

कमीशन भारत की शासन-पद्धति की जांच करने और नए सुधारों के संबंध में रिपोर्ट तैयार करने के लिए नियुक्त की। सर जान साइमन इस कमीशन का प्रधान था। इस कमीशन के सातों सदस्य अंग्रेज़ थे। भारतीय सदस्य कोई भी न था। इसलिए समस्त-भारत में अप्रसन्नता की लहर दौड़ गई। इस कमीशन का बाइकाट किया गया।

स्वराज्य-पार्टी

इस बाइसराय के समय में स्वराज्य पार्टी दो दलों में बंट गई: एक वास्तविक स्वराज्य-पार्टी और दूसरी सहयोग के बदले सहयोग करने वाली पार्टी। १९२६ के चुनाव में दोनों दलों के सदस्य व्यवस्थापक सभाओं के चुनाव में सफल हुए।

अफ़गानिस्तान में क्रांति

१९२७-२८ में अमीर अमान-उल्लाह खां ने यूरोप का दौरा किया और वहां से लौटकर उसने अपने देश में सुधार किये। इन सुधारों से उसका तात्पर्य यह था कि अफ़गानों का रहन-सहन, रस्में और प्रथाएं सब यूरोपियन रीति के अनुसार ढाली जायें। इस पर उसकी पठान प्रजा बिगड़ उठी। उन्होंने विद्रोह कर दिया। १९२९ में अमीर अमान-उल्लाह को गद्दी से हाथ धोना पड़ा और निर्वासित होकर वह इटली में रहने लगा। देश में कुछ देर तक तो गृह-युद्ध जारी रहा। बचा सक्का नाम के एक पठान सरदार ने गद्दी पर अधिकार जमा

आशा दूर चली गई जो मज़दूर-पार्टी के शासन-काल में मिलने संभव थे। दूसरी गोलमेज़ कांफ्रेंस में महात्मा गांधी भी कांग्रेस की ओर से सम्मिलित हुए थे। वे असफल वापस आये। १९३२ में इंगलैंड की सरकार ने यह निर्णय कर दिया कि भारत की धारा-सभाओं में भविष्य में भी सांप्रदायिक चुनाव जारी रहेगा। इसके कुछ देर बाद केंद्रीय सरकार की नौकरियों में भी सांप्रदायिक चुनाव जारी रहेगा। इसके कुछ देर बाद केंद्रीय सरकार की नौकरियों में भी सांप्रदायिकता स्थापित कर दी गई। इस पर सिक्खों और हिंदुओं की ओर से बड़ा विरोध हुआ। जब कांग्रेस ने देखा कि नव-विधान उनकी आशा के अनुसार नहीं तब उसने भी सरकार का विरोध आरंभ कर दिया। १९३२ में लंदन में तीसरी गोलमेज़ कांफ्रेंस हुई। उसमें नव-विधान के सब नियम बनाए गए। इसके बाद गोलमेज़ की रिपोर्ट के आधार पर एक क़ानून तैयार किया गया, जो इंगलैंड की पार्लियामेंट की सिलेक्ट कमेटी (Select Committee) को सौंपा गया। अंत में बहुत वाद-विवाद के बाद १९३५ में इंगलैंड की पार्लियामेंट ने गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट पास कर दिया।

Irwin Pact) कहा जाता है। इस समय पंडित मदनमोहन मालवीय हिंदुस्तान की ओर से गोलमेज़ कांफ्रेंस पर गए। सर तेज बहादुर सप्रु और मौलाना शौकतअली भी गए। १९३१ में गोलमेज़ कांफ्रेंस का जो दूसरा अधिवेशन हुआ, उसमें कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने भाग लिया। सांप्रदायिक उलझन सुलझाने का यत्न किया गया परंतु कुछ न बना। अप्रैल १९३१ में लार्ड अर्विन की अवधि समाप्त हो गई। वह इंगलैंड चला गया और लार्ड विलिंगडन वाइसराय होकर आया।

कश्मीर में झगड़ा

१९३१ में कश्मीर में सांप्रदायिक झगड़ा उठ खड़ा हुआ। मुसलमान राज्य व्यवस्था से अप्रसन्न थे। पंजाब से मुसलमानों के जत्थे जाने शुरू होगए। भारत सरकार ने उन जत्थों का जाना मना कर दिया और वहाँ अपनी सेना भेजी। तब कहीं शांति हुई। कुछ वर्षों के लिए एक अंग्रेज़ प्रधान-मंत्री बनाकर भेजा गया। महाराजा हरिसिंह इस समय कश्मीर और जम्मू की गद्दी पर

आशा दूर चली गई जो मज़दूर-पार्टी के शासन-काल में मिलने संभव थे। दूसरी गोलमेज़ कांफ्रेंस में महात्मा गांधी भी कांग्रेस की ओर से सम्मिलित हुए थे। वे असफल वापस आये। १९३२ में इंगलैंड की सरकार ने यह निर्णय कर दिया कि भारत की धारा-सभाओं में भविष्य में भी सांप्रदायिक चुनाव जारी रहेगा। इसके कुछ देर बाद केंद्रीय सरकार की नौकरियों में भी सांप्रदायिक चुनाव जारी रहेगा। इसके कुछ देर बाद केंद्रीय सरकार की नौकरियों में भी सांप्रदायिकता स्थापित कर दी गई। इस पर सिक्खों और हिंदुओं की ओर से बड़ा विरोध हुआ। जब कांग्रेस ने देखा कि नव-विधान उनकी आशा के अनुसार नहीं तब उसने भी सरकार का विरोध आरंभ कर दिया। १९३२ में लंदन में तीसरी गोलमेज़ कांफ्रेंस हुई। उसमें नव-विधान के सब नियम बनाए गए। इसके बाद गोलमेज़ की रिपोर्ट के आधार पर एक क़ानून तैयार किया गया, जो इंगलैंड की पार्लियामेंट की सिलेक्ट कमेटी (Select Committee) को सौंपा गया। अंत में बहुत वाद-विवाद के बाद १९३५ में इंगलैंड की पार्लियामेंट ने गवर्नमेंट आव इंडिया एक्ट पास कर दिया।

भारत-सरकार ने अफ़ग़ानिस्तान के अंतरीय मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया और अफ़ग़ानिस्तान की तीसरी लड़ाई में रावलपिंडी पर जो संधि हुई थी, उसका अक्षरशः पालन किया।

अलवर

१९३२ में अलवर रियासत में झगड़ा उठ पड़ा। भारत-सरकार ने शांति स्थापित करने के लिए अपनी सेना भेजी। बाद में वहां अंग्रेज़ प्रधान-मंत्री नियुक्त किया गया और अलवर-नरेश को गद्दी से उतार दिया गया। अलवर के महाराज का १९३७ में फ्रांस में देहांत हो गया। उनके संतान कोई न थी। अतएव भारत-सरकार ने थाना के ठाकुर तेजसिंह को, जो उनके निकट संबंधी हैं, गद्दी पर बिठा दिया।

एबीसीनिया

१९३५ में इटली और एबीसिनिया में युद्ध छिड़ गया। भारतीय अधिकारों की रक्षा के लिए वहां भारतीय सेना भेजी गई। इटली ने एबीसीनिया पर कब्ज़ा कर लिया। किसी भी दूसरे देश ने उसकी सहायता न की। लीग आव नेशन्स (League of Nations) मृत प्रमाणित हुई।

नमक का कर और निर्यात तथा आयात कर की आय पर अधिकार होगा। दूसरी ओर माल-विभाग, नहरें, जंगल, दीवानी और फ़ौजदारी अदालतें, जेलखाने, पुलिस, शिक्षा, अस्पताल, कृषि, कला-कौशल, म्युनिसिपल कमेटियां और ज़िला बोर्ड, वक्फ़ (धर्मार्थ स्थान) और इस प्रकार के सब विभाग प्रांतीय सरकारों के अधीन होंगे। इन विभागों के खर्च के लिए उनकी आमदनी के साधन, भूमि-कर, पानी का कर, स्टैम्प्स, आबकारी, और बिजली से होने वाली आमदनी होंगी।

भारतीय रियासतों को भी भारत के शासन में मत देने का अधिकार मिल गया है। अब अंग्रेज़ी इलाके और भारतीय रियासतों के संगठन द्वारा भारत के नव-विधान को सफल बनाने का प्रयास होगा और नवीन भारत की नींव स्थापित होगी।

नए प्रांत

नव-विधान द्वारा सिंध बंबई प्रांत से अलग करके एक पृथक् प्रांत बना दिया गया है। उड़ीसा बिहार से अलग होकर एक पृथक्-प्रांत बन गया है। इसके अतिरिक्त इसी समय से अदन भी भारत से पृथक् हो कर सीधे इंगलैंड के अधीन एक उपनिवेश की भांति हो गया है। बर्मा भी भारत से पृथक् कर दिया गया है।

सम्राट् जार्ज की मृत्यु

२१ जनवरी १९३६ को सम्राट् जार्ज पंचम कुछ दिनों की बीमारी के बाद परलोक सिधार गये। इस पर उनका बड़ा बेटा एडवर्ड, जो प्रिंस आव वेल्स के नाम से प्रसिद्ध था, सिंहासन पर बैठा और उसने एडवर्ड अष्टम की उपाधि धारण की। सम्राट् एडवर्ड अष्टम ४२ वर्ष की आयु में इंगलैंड की गद्दी पर बैठा। उसने १९२१ में भारत का दौरा किया था और उसने अंग्रेज़ी साम्राज्य के प्रत्येक विभाग को भली-भांति देखा था। इसलिए उसे साम्राज्य के विभिन्न लोगों के संबंध में पूरा-पूरा परिचय प्राप्त था।

अप्रेल १९३६ में लार्ड विलिंगडन की अवधि समाप्त हो गई और उसके स्थान पर लार्ड लिनलिथगो वाइसराय नियुक्त होकर भारत आया।

लार्ड लिनलिथगो १९३६—१९४३

लार्ड लिनलिथगो

लार्ड लिनलिथगो भारत की परिस्थितियों से भली-भांति परिचित था। लार्ड इर्विन के समय में राजकीय कृषि कमीशन के प्रधान के रूप में उसने १९२६—२७ में सारे भारतवर्ष का दौरा

जार्ज छठा

१९२४ में स्काटलैंड के लार्ड की लड़की एलिज़बेथ से हुआ। इनकी बड़ी लड़की का नाम एलिज़बेथ है जो इस समय सिंहासन की उत्तराधिकारिणी है। सम्राट् जार्ज छठे की आयु का पहला भाग जंगी बेड़े में बीता। मई १९३७ में लंदन में इनका राज्याभिषेक बड़े समारोह से मनाया गया।

मित्र-राष्ट्रों के हाथ और मज़बूत हो गये। अंग्रेज़ों और अमरीका के मिले प्रयत्न से जर्मनी को अफ्रीका से भागना पड़ा। परंतु इधर जापान ने ज़ोर दिखाया। समस्त बर्मा को जीत ले गया। २६ जुलाई १९४३ को इधर इटली ने हथियार डाल दिये और मुसोलिनी जर्मनी भाग निकला। अभी तक समस्त इटली देश जीता नहीं गया। इन विजयों के बाद मित्र-राष्ट्र-सेना ने जून १९४४ में फ्रांस के प्रांत नार्मंडी पर आक्रमण कर दिया। युद्ध अभी हो रहा है, न जाने भविष्य में क्या घटनाएँ होती हैं, परंतु इतना निश्चय है कि अभी कुछ समय के लिए सब देशों को बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

अगस्त आफ़र

अगस्त १९४० में अगस्त आफ़र द्वारा बृटिश पार्लियामेंट ने भारत को यह वचन दिया कि महायुद्ध के बाद जल्दी से जल्दी भारत को पूरा डोमीनियन स्टेटस दे दिया दिया जायगा। इसके साथ ही यह बात कही गई कि नई शासन-प्रणाली की योजना भारतीयों द्वारा बनाई जायगी। इस मध्यकाल में एक परामर्शदात्री रक्षा कौंसिल (Advisory Defence Council) बनाने को कहा गया और केंद्रीय एग्ज़ेक्टिव कौंसिल में भारतीयों की संख्या बढ़ाने का वचन भी था। परंतु इस प्रस्ताव को न कांग्रेस ने पसंद किया, और न ही मुसलिम लीग ने। कांग्रेस को तो भविष्य के वचन पर अविश्वास था। इसलिए उसने यह प्रस्ताव ठुकड़ा दिया। मुसलिम लीग एग्ज़ेक्टिव कौंसिल में आधे सदस्य चाहती थी। एक प्रकार से वह पाकिस्तान की योजना सरकार से स्वीकृत कराना चाहती थी। ऐसा न होने पर लीग भी इसके विरुद्ध रही। ऐसी स्थिति में राजनीतिक अकर्मण्यता ही चलती रही।

एग्ज़ेक्टिव कौंसिल का भारतीयकरण

जूलाई १९४१ में परामर्शदात्री संरक्षा कौंसिल बनाई गई और केंद्रीय एग्ज़ेक्टिव कौंसिल में भारतीयों की संख्या तीन से बढ़ा कर/आठ कर दी गई। बाद में अगस्त १९४२ में भारतीयों की संख्या आठ से बढ़ा कर ग्यारह कर दी गई।

कांग्रेस का बृटिश सरकार के लिए 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव

महात्मा गांधी इस महायुद्ध के महान रक्त-पात से डरते थे। वे समझते थे कि व्यर्थ ही भारत को युद्ध में घसीटा गया है। वे कहने लगे कि अंग्रेज़ राज्य-शासन का भार कांग्रेस के सिपुर्द करके भारत से चले जायँ। कांग्रेस स्वयं ही दूसरी राजनीतिक संस्थाओं से समझौता कर लेगी। ऐसा न होने पर सत्याग्रह आरंभ किया जायगा। इस पर

महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं को बंदीगृहों में डाल दिया गया। देश भर में बड़ी हलचल मची। कुछ महीनों के बाद कहीं स्थिति वश में हो सकी। सरकार ने इस हलचल का उत्तरदायित्व कांग्रेस पर डाला।

पाकिस्तान

भारतवर्ष में कई प्रांत ऐसे हैं जिनमें मुसलमानों की बहु संख्या है। मुसलिम लीग के नेता मुहम्मदअली जिन्ना तथा उनके साथी यह चाहते हैं कि मुसलमान बहु संख्या वाले प्रांतों को इकट्ठा करके पाकिस्तान बना दिया जाय। वे चाहते हैं कि पंजाब, पश्चिमोत्तरी सीमांत प्रांत, काश्मीर, तथा सिंध बलोचिस्तान को इकट्ठा कर दिया जाय। उधर पूर्व में बंगाल और आसाम को मिला दिया जाय। जब कांग्रेस

कर सके। २. युद्ध के बंद होते ही शासन-प्रणाली बनाने वाली एक कमेटी बनाई जायगी, जिसमें प्रांतीय कौंसिल और रियासतों के प्रतिनिधि होंगे। ब्रिटिश सरकार ने इस कमेटी द्वारा बनाई शासन-प्रणाली को मानना और लागू करना निम्न शर्तों पर मान लिया:—(क) जो भी प्रांत व रियासत नई शासन-प्रणाली से पृथक् रहना चाहे, पृथक् रह सके और जो सम्मिलित होना चाहे, सम्मिलित हो सके। (ख) शासन-प्रणाली बनाने वाली कमेटी अंग्रेज़ों के हाथ से राज्य-शासन-भार भारतीयों के हाथ आने से पूर्ण परिवर्तन के समय ब्रिटिश सरकार के साथ सब तरह की बातों के संबंध में संधि कर सकेगी। (३) नई शासन-प्रणाली से पहले ब्रिटिश सरकार ने सारी दुनिया के युद्ध-संबंधी प्रयत्न के लिए भारत की रक्षा का कार्य अपने हाथ में रखना आवश्यक समझा। किंतु भारत के सैनिक, नैतिक, और प्राकृतिक साधनों को सुव्यवस्थित करने का उत्तरदायित्व भारतीय सरकार पर होगा, जिससे आशा की गई कि भारतीय नेता लोग फिर सहयोग देंगे। दो सप्ताह के विचार-विनिमय के बाद यह योजना कांग्रेस, मुसलिम लीग आदि सब राजनीतिक पार्टियों ने ठुकरा दी। १२ अप्रेल को क्रिप्स इंगलैंड लौट गया।

लार्ड वेवल १९४३—

लार्ड वेवल

अक्तूबर सन् १९४३ में लार्ड लिनलिथगो के इंगलैंड वापस चले जाने पर लार्ड वेवल को वायसराय नियुक्त किया गया। आप पहले भारत में कमांडर-इनचीफ़ रहे हैं। आप इस महा-युद्ध में भारत तथा अफ्रीका में ब्रिटिश सेनाओं के सेनापति थे जब कि आपको वायसराय बनाया गया। इस समय विश्व-व्यापी महा-युद्ध के कारण यह आवश्यक समझा गया कि किसी कुशल फ़ौजी अधिकारी को वायसराय बनाया जाय। इधर जापान बर्मा जीत चुका था, उधर जर्मनी का आतंक छाया हुआ था और ऐसी परिस्थिति में लार्ड वेवल जैसे एक कुशल सेनापति का वायसराय बनाया जाना उचित जान पड़ा।

बंगाल में अकाल

लार्ड वेवल ने जब वायसराय का काम संभाला, तब बंगाल में भयंकर अकाल फैल रहा था। इस अकाल के कारण दो-तीन लाख आदमी भूख से पीड़ित हो कर मर गए। युद्ध के कारण खाद्य-सामग्री पर्याप्त मात्रा में फ़ौजी विभाग ख़रीद लेता है, और फिर यातायात का साधन भी ठीक न मिलने के कारण बंगाल में खाद्य-सामग्री की कमी होने लगी। व्यापारियों ने क़ीमतें ख़ूब चढ़ा-चढ़ा दीं और परिणाम यह हुआ कि ग़रीब लोग भूख से तड़पते हुए बाज़ारों और गलियों में मरे पाये जाने लगे। लार्ड वेवल ने इसलिए पहला काम जो किया वह था बंगाल में अकाल संबंधी कार्य की देख-भाल।

प्रश्न

१. महात्मा गांधी, सर मुहम्मद इकबाल पर संक्षिप्त नोट लिखो। (मैट्रिक १९३९)

२. भारत को ब्रिटिश राज्य से क्या लाभ हैं ? (मैट्रिक १९४१)

३. महात्मा गांधी और कांग्रेस पर संक्षिप्त नोट लिखो। (भूषण १९३९)?

४. १९३५ के भारतीय शासन-विधान द्वारा भारत के शासन-प्रबंध में क्या परिवर्तन हुआ। (भूषण १९४१)

५. स्वदेशी-आंदोलन, शारदा एक्ट, गांधी-अर्विन समझौता—इन पर नोट लिखो।

६. सर जान साइमन पर नोट लिखो।

७. पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल की बनावट और उसके अधिकारों पर नोट लिखो।

८. सम्राट् एडवर्ड अष्टम ने सिंहासन से क्यों त्याग-पत्र दे दिया ? मिस सिम्पसन कौन है और उसके संबंध में तुम क्या जानते हो ?

९. लार्ड विलिंगडन के शासन-काल की मुख्य घटनाओं का वर्णन करो।

१०. लार्ड लिनलिथगो पर संक्षिप्त नोट लिखो।

११. नादिरशाह पर नोट लिखो और बताओ कि उसे काबुल की गद्दी कैसे मिली ?

१२. वर्तमान महायुद्ध के क्या कारण हैं और इसका आरंभ कैसे हुआ ? अंत में यह विश्व-व्यापी रूप कैसे धारण कर गया ?

१३. क्रिप्स-योजना, अगस्त आफ़र, और पाकिस्तान पर संक्षिप्त नोट लिखो।